bXuw
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

,e ,p Mh-19
fgUnh nfyr lkfgR; dk fodkl

खंड

2

fgUnh nfyr dgkuh-I

इकाई 7
दलित कहानी की विशि-टता, कथावस्तु, सामाजिक& सांस्कृतिक सरोकार 5

इकाई 8
पच्चीस चौका डेढ सौ % vkseizdk'k okYehfd 14

इकाई 9
आवाजें % ekgunkl uSfe'kjk; 24

इकाई 10
आमने-सामने % fofiu fcgkjh 36

इकाई 11
परिवर्तन की बात % lwjt iky pkSgku 48

पाठ्यक्रम विशे-ज्ञ समिति

iks- vke voLFkh
गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

iks- xksiky jk;
सी–3, कावेरी, इग्नू आवासीय
परिसर, मैदान गढ़ी,
नई दिल्ली

iks- ukeoj flag
32–ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

iks- fuR;kuan frokjh ¼lsokfuoÙk½
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

iks- fueZyk tSu ¼lsokfuoÙk½
ए–21/71, कुतुब एन्क्लेव,
फेज–I, गुड़गांव, हरियाणा

iks- ie 'kdj ¼lsokfuoÙk½
बी–16, सागर विश्वविद्यालय
परिसर, सागर

iks- ethc fjtoh ¼lsokfuoÙk½
220, जाकिर नगर
नई दिल्ली

iks- eSustj ik.Ms; ¼lsokfuoÙk½
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

iks- jkeLo:i proSnh
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

iks- yYyu jk; ¼lsokfuoÙk½
3, प्रीत विला, समर हिल, शिमला

iks- f'kodqekj feJ ¼lsokfuoÙk½
एफ–17, मानसरोवर पार्क कालोनी
पंचायती हॉस्पिटल मार्ग
बल्लभ विद्यानगर, गुजरात

Lo- f'ko izlkn flag
वाराणसी

iks- lqjtHkku flag
आई–127, नारायणा विहार, नई दिल्ली

ikB;Øe fuekZ.k

ikB ys[kd	bdkbZ la[;k	ikB;Øe la;kstd ,oa laiknd
Mk- jke pUnz हिंदी विभाग जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	7	iks- foey Fkkjkr मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी,, नई दिल्ली
Mk- fujatu lgk; काशी हिंदी विद्यापीठ, बनारस (उ.प्र.)	8–9	
Mk- ctjax fcgkjh frokjh देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय	10	
Mk- lqjt cMR;k दयालबाग एज्यूकेशन इन्स्टीट्यूट दयालबाग, आगरा (उत्तर प्रदेश)	11	

emn.k fuekZ.k	vkoj.k fp=dkj	lfpoky;h lg;ksx
Jh- ,u- ikM;s अनुभाग अधिकारी मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी,, नई दिल्ली	lqJh lkojdj मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी,, नई दिल्ली	fefFkys'k izlkn मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी,, नई दिल्ली

अगस्त, 2013

© इंदिरा गांधी रा-ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2013

ISBN-

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी रा-ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी रा-ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली -110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी रा-ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी.166ए, भगवती विहार, उत्तम नगर, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), नई दिल्ली–110059

मुद्रित

[kaM ifjp;

आधारित प्रस्तुत खंड में आप हिंदी दलित आत्मकथनों का अध्ययन करेंगे, इस खंड में कुल पांच इकाइयां शामिल हैं। जिनका क्रम निम्नानुसार है,

bdkbZ 16 nfyr vkRedFku dh fo'k"krk% lkekftd&lkL—frd ifjfLFkfr;ka ds nLrkost

bdkbZ 17 ^tBu* % vkRekuHkwfr dh eekZUrd vfHkO;fä

bdkbZ 18 ^tBu* % vLi`';rk] voekuuk vkSj cfg"dkj ds n'k

bdkbZ 19 viu&viu fiatjs&I % Kku ds lalkj esa ?kq.kk dk lekt'kkL=

bdkbZ 20 viu&viu fiatjs&II

;kruk vkSj vuqHko ls mitk fparu

दलित आत्मबोध से विकसित चेतना ही दलित साहित्य लेखन में प्रस्तुत खंड की प्रथम इकाई में आप दलित आत्मकथन विधा के स्वरूप, रचना प्रक्रिया, वैचारिकी, निर्मिति तथा लक्ष्य और प्रभाव को समझ सकेंगे। मराठी में दलित आत्मकथनों ने जिस विद्रोही चेतना, अस्मिताबोध, इतिहासबोध और भविष्य दृष्टि दी है, उसी का विस्तार हिंदी के दलित आत्मकथनों में हम देखते हैं। इस खंड में आप दो आत्मकथनों का अध्ययन करेंगे, वे हैं; ओमप्रकाश वाल्मीकि का आत्मकथन 'जूठन' और मोहनदास नैमिशराय का 'अपने–अपने पिंजरे'। दलित आत्मकथनों को भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में प्रतिष्ठा प्राप्त है, जिसका कारण है इसमें अभिव्यक्त अनुभव विश्व, इसकी जीवनवादी सौन्दर्यानुभूति और अनोखी शैली। जीवन के त्रासद अनुभवों की अभिव्यक्ति की प्रेरणा और चेतना का स्रोत डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी है, जिसका अंतिम लक्ष्य थोपी गई गुलामी से मुक्ति हासिल करने के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाये। इसलिए आभिजात्य सौंदर्यशास्त्र के मानदंडों को सहजता से लाँघ कर दलित साहित्य के आशयजन्य अर्थवान सृजन से विश्व के वंचितों से नाता जोड़ते हैं।

आत्मकथन का प्रारम्भ मराठी साहित्य में वरिष्ठ लेखक दया पवार के आत्मकथन बलुत (1978) से हुई थी, जिसे पढ़कर आभिजत्य मराठी लेखकों को जोरदार झटका लगा था, क्योंकि इस अनोखे अनुभव विश्व की ना तो उन्हें पहचान थी और अगर होगी भी तों उसकी अनदेखी ही की थी। बहिष्कृत जीवन की वास्तविकता आभिजात्यों के लेखन का विषय ही नहीं था। अतः अस्पृश्यता से अभिशप्त वेदना, व्यथा, दुःख, उत्पीड़न और आक्रोश स्पंदित होकर शब्दरूप ग्रहण नही कर सका। दलित लेखकों ने अपनी रचनाओं में यह प्रश्न बार–बार दोहराया है। गांव–देहात के दक्षिण में बसी बस्तियों में रहने वाले इंसानों से हर संभव परिश्रम के काम करवाने वाले उनसे कमतर इन्सानों जैसा बर्ताव क्यों करते हैं। बचपन से लेकर मृत्यु तक अवमानित होते जाति दंश झेलने की मजबूरी क्यों? दलित आत्मकथन जीवन के इसी सच को बेहद तल्खी के साथ उजागर करते हुए इसे बदलने के लिए कृत संकल्प है।मराठी में शंकर राव खरात के 'तराल–अंतराल', दया पवार के 'अछूत, शरण कुमार लिम्बाले के 'अक्करमाशी,'लक्ष्मण गायकवाड़ के 'उठाईगीर' और बेबी ताई काम्बले के 'जीवन हमारा',कौसल्या बैसंत्री के 'दोहरा अभिशाप', उर्मिला पवार के 'आयदान', सुशीला टाकभौरे के 'शिकंजे का दर्द', आत्मकथनों में बहिष्कृत जीवन की निर्मम सच्चाइयां प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त हुई। आभिजात्य साहित्य ने कुत्सित सोच के कारण इस वास्तविकता से समाज को रू-ब-रू होने नहीं दिया था। अस्मिताबोधि

चेतना साहित्य ने छिपाये गए सत्य को मुखर होकर अवगत करने का ऐतिहासिक कार्य किया। दलित जीवन के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक संदर्भों से जुडे तमाम, उत्पीड़न, अवमानना, बहिष्कार, तकलीफें, संत्रास, वंचना की सब सच्चाईयों को बेलाग होकर शब्दबद्ध करते हैं। दलित आत्मकथन किसी की सहानुभूति हासिल करने के लिए नही बल्कि रचनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा ब्राह्मणवाद के षडयंत्र से हमें अवगत करते हैं। सदियों से हाशिए पर रहें इन्सान ने अपने दारुण अनुभवों को सृजनात्मक रूप में समाज के सामने रख कर साहित्य, समाज और संस्कृति को आइना दिखा दिया है। मानवता को शर्मसार करने वाली नीति, धर्मपरंपरा, पूर्वजन्म, कर्मवाद, भाग्यवाद तथा आत्मा के पुनर्जन्म जैसी अतार्किक और मिथ्या विचारधारा को बेनकाब किया है। समताधिष्टित समाज की निर्मिति आत्मकथन लेखन का महती उद्देश्य रहा है, क्योंकि अस्मिताबोध से संपन्न व्यक्ति गुलामी और अपमानित जीवन से न केवल असहमत होता है बल्कि ऐसी समाज संरचना का प्रखर विरोध भी करता है। प्रस्तुत खंड में शामिल 'जूठन' तथा 'अपने–अपने पिंजड़े' का पाठावलोकन करने पर आप स्वयं ही इस तथ्य से अवगत हो जायेगे की ज्ञान से वंचित हाशिए के समूह के ज्ञानार्जन की प्रक्रिया की स्वाभाविक फलश्रुति अस्मिताबोधि सृजन में इतनी प्रखर क्योंकर हुई। रचनात्मकता के क्षेत्र में दलित रचनाकार का प्रवेश किन स्थितियों में हुआ इसे जानना आपके लिए अत्यंत जरूरी हैं।

bdkbZ 7 nfyr dgkuh dh fof'k"Vrk] dFkkoLrq] lkekftd&lkaLÑfrd ljksdkj

bdkbZ dh :ijs[kk

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 दलित लोक कथा की विरासत एवं दलित कहानी

7.3 दलित कहानी की कथावस्तु

7.4 दलित कहानी की विशिष्टता

7.5 दलित कहानी के सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार

7.6 सारांश

7-0 mís';

'हिन्दी दलित साहित्य की परंपरा और विकास' के खंड–2 की यह पहली इकाई है। इस इकाई में आप दलित कहानी की कथावस्तु, विशिष्टता और उसके सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकारों का अध्ययन करेंगे। दलित कहानी का यथार्थ, उसकी भावभूमि बिल्कुल अलग है। हिन्दी की परंपरागत साहित्यिक परंपरा के समान्तर इसका विकास हुआ है, दलित कहानियों का कलेवर और बिम्ब बिल्कुल अलग है। इसकी भाषा एवं संवेदना नए सौंदर्य बोध का सृजन करती है। समतापरक समाज की संरचना दलित कहानियों का मुख्य ध्येय है जो आंबेडकरवादी विचारधारा पर आधारित है। आइए, इन्हीं संकल्पनाओं के साथ इस इकाई का तर्कपूर्ण अध्ययन–मनन करें। इसके अंतर्गत आप निम्नलिखित बिन्दुओं को व्यापकता में समझ सकेंगेः–

- हिंदी कहानी के विकास में दलित लोक कथाओं की भूमिका से परिचित हो सकेंगे;
- दलित कहानी के उदय और उसकी परंपरा को जान सकेंगे;
- हिंदी की दलित कहानी परंपरागत साहित्य परंपरा से कैसे अलग है – इसका सम्यक विश्लेषण कर सकेंगे;
- दलित कहानी की कथावस्तु और अभिव्यक्ति की भिन्नता की पड़ताल कर सकेंगे;
- दलित कहानी में इतिहास के सच को खोज सकेंगे;
- इसके अंतर्गत संस्कृति एवं वर्चस्व के संबंधों को समझ सकेंगे;
- दलित लेखन के वैशिष्ट्य को सम्पूर्णता में परख सकेंगे;
- यातना और आक्रोश के सर्जनात्मक रूपांतरण से आप भली–भांति परिचित हो सकेंगे;
- दलित कहानियों में अन्तर्निहित वैचारिकता की वजहों से अवगत हो सकेंगे; और

- दलित कहानियों में अभिव्यक्त आकांक्षा एवं भविष्योन्मुखी सपनों को सामाजिक—सांस्कृतिक सरोकारों में तब्दील होते हुए देख सकेंगे।

अब यह इकाई आपके समक्ष प्रस्तुत है। आइए, इसका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन—विवेचन करें।

7-1 izLrkouk

दलित कहानी की कथावस्तु, विशिष्टता और सामाजिक—सांस्कृतिक सरोकार को साहित्य के परंपरागत ढांचे पर निर्मित मानदंडों के आधार पर समझना या परखना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। दलित साहित्य की वैचारिकी तथा पृष्ठभूमि को समझना अपरिहार्य है। खड़ी बोली हिंदी में लिखित कहानी का इतिहास दलित कहानी के परिप्रेक्ष्य में सरोकारों को स्पष्ट नहीं कर सकता। इस सच को ईमानदारी से स्वीकार करना चाहिए कि हिंदी साहित्य सत्ता में सभी वर्ग, जाति और धर्म के लोगों की बराबर की भागीदारी नहीं रही है। विषमता पर आधारित व्यवस्था ने यह अवसर ही नहीं दिया था कि सभी को एक साथ, एक जैसी शिक्षा मुहैया हो सके। यहाँ का बहुसंख्यक वर्ग विशेषकर दलित और स्त्रियों को धर्म के आदेश के अनुपालन में शिक्षा से लंबे समय तक वंचित रखा गया है। वर्चस्व के ऐतिहासिक और यातनादायी सच से गुजरे बिना क्या हम विषय की तह तक पहुंच सकते हैं? हिंदी साहित्य के इतिहास में दलितों—वंचितों के लिए कितनी जगह है? क्या साहित्य और सत्ता के संबंध पर बात नहीं होनी चाहिए? इन सवालों से गुजरे बगैर हिंदी की दलित कहानी के सरोकारों को नहीं समझा जा सकता।

बौद्धकालीन भारत और संत युगीन भारत के इतिहास को पुनर्विश्लेषित करना चाहिए जिसमें हिंदी साहित्य की शाश्वतता और स्वायत्तता के समक्ष चुनौती पेश की थी। हिंदी के नवजागरण कालीन साहित्य में दलित प्रश्न और दलितों की अनुपस्थिति ने हिंदी साहित्य की परंपरा और विरासत पर ही सवालिया निशान खड़ा किया है। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में लिखी गई इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' भाषा और धर्म की आड़ में हिंदी कहानी के इतिहास को हाशिए पर डाल दी गई है। हिंदी—उर्दू के विवाद ने गद्य के इतिहास को काफी प्रभावित किया है।

हिंदी साहित्य के वैचारिक इतिहासकार माने जाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 1900 ई. से हिंदी कहानी को चिन्हित, रेखांकित और स्थापित किया है। आपके दिमाग में सहज ही एक सवाल, गूंजना चाहिए कि आधुनिक हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग के प्रवर्त्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादकत्व में 'सरस्वती' पत्रिका में सन् 1914 में पटना के हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित हुई थी। यह अलग प्रश्न है कि हीरा डोम का कोई परिचय नहीं, कोई अतीत या इतिहास नहीं है। उसी दौर में हिंदी पट्टी में स्वामी अछूतानंद ने सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन छेड़ा था। हिंदी साहित्य का 'नवजागरण कालीन' दौर भी वही था जब राष्ट्रीय फलक पर डॉ. आंबेडकर सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर सक्रिय थे। परंतु हिंदी कहानी के उद्भव और विकास के इतिहास में दलित कहानी का कोई इतिहास नहीं मिलता। दलित जीवन से जुड़ी प्रेमचंद द्वारा लिखित कहानियाँ सन् 1929—30 के आसपास जरूर मिलती है लेकिन दलित द्वारा लिखित किसी भी कहानी का जिक्र नहीं मिलता, जबकि लोक में दलित की उपस्थिति से आप इंकार नहीं कर सकते। इस पर विस्तृत एवं गम्भीर शोध तथा विश्लेषण की जरूरत है।

बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के परिनिर्वाण के बाद आधुनिक काल की साहित्यिक–सांस्कृतिक गतिविधियों में खासकर महाराष्ट्र के दलित संदर्भों में बुनियादी बदलाव देखा जा सकता है। 70 के दशक तक वहाँ दलित लेखन आंदोलन का रूप धारण कर लेता है लेकिन हिंदी क्षेत्र का साहित्य प्रगतिशील आंदोलन और परंपरागत लेखन में दलित लेखन के लिए जगह नहीं बना पाया और वर्ण–व्यवस्था के बुनियादी सवालों पर चुप्पी साधे रहा। भारतीय समाज संरचना को वर्ग आधारित विभाजन की मार्क्सवादी व्याख्या में समाविष्ट करके की गई। गलती का अहसास अभी तक भी प्रगतिशील साहित्यिक सांस्कृतिक जगत में जगा नहीं । कई वर्ग या साम्यवाद में ही हिंदी साहित्य को उलझाता रहा। आंबेडकरवादी विचारों के राष्ट्रीय प्रचार–प्रसार के बावजूद प्रगतिशील लेखन ने सामाजिक समस्या को साहित्य सर्जना के उद्देश्यों में शामिल नहीं किया। आजादी के बाद संवैधानिक व्यवस्था से दलित समाज को शिक्षा और रोज़गार के अवसर मिले। आंबेडकरवादी विचारधारा ने दलित साहित्य लेखन को एक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य दिया है। देश की लगभग सभी भाषाओं में दलित लेखन हो रहा है। संपूर्ण लेखन की मूल अवधारणा एक ही है असमता, अन्याय और शोषण का खात्मा करना तथा अहिंसा समता मूल्यों पर आधारित समाज की स्थापना करना। स्वतंत्रता और भाई चारे के लिए माहौल बनाना। दलित कहानी लेखन की कथावस्तु का मूल आधार यही है और यही सरोकार दलित कहानियों का केन्द्र बिन्दु है।

हिंदी में आंबेडकरवादी विचारों एवं चेतना पर आधारित दलित कहानी लेखन का समय मोटेतौर पर सन् 80 के दशक के उत्तरार्द्ध को माना जा सकता है। इस इकाई के पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप जान चुके होंगे कि दलित लेखन में चेतना, अधिकार और आत्मसम्मान का क्या आशय है और इस लेखन या साहित्य द्वारा समतामूलक समाज की ओर बढ़ना क्यों लाज़िमी है। चेतना की जो धारा मराठी दलित साहित्य से शुरू हुई थी उसका विस्तार और विरासत संपूर्ण भारत में अपने समसामयिक आंदोलनों एवं संघर्षों के साथ एकाएक करते हुए दलित साहित्य एवं विमर्श में परिणत होती है। हिंदी की दलित कहानियों ने पिछले दो दशक से दलित चिंतन को अपनी विशिष्टता से काफी संवर्द्धित किया है। हिंदी के दलित कहानीकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदार, प्रेम कपाड़िया, बी. एल. नायर, सूरजपाल चौहान, कावेरी, कुसुम मेघवाल, जयप्रकाश कर्दम, विपिन बिहारी, नीरा परमार इस दौर के महत्वपूर्ण कहानीकार है, उनकी कहानियों में अभिव्यक्त दलित जीवन की त्रासद सच्चाई से आप इस इकाई के अध्ययन से रूबरू होंगे।

7-2 nfyr yksd dFkk dh fojklr ,oa nfyr dgkuh

जैसा कि आप जानते है कि भारत में लोककथा की परंपरा बहुत ही समृद्ध रही है। मौखिक और वाचिक परंपरा में इस अमूल्य धरोहर को बचा कर रखा है। लोक कथाओं के संबंध में उद्भव की अवधि नहीं निर्धारित की जा सकती। इसका संबंध मनुष्य के जन्म की कहानी से जुड़ा है। भारत ही नहीं दुनिया के हर भाषा–भाषी समाज में ऐसी परंपराएं रही होगी। आप स्वयं भी अपने घरों में अपने परिवार के बड़े बुजुर्गों की जुबानी तमाम कथाएं सुनते रहे होंगे। लोक कथाओं की यह परंपरा अभी तक जीवित है। परंतु यहाँ महत्वपूर्ण यह है कि लोककथा के माध्यम से दलित कहानी की विकास यात्रा को उसकी विशिष्टता और सरोकरों को कैसे समझा जाए?

दरअसल लोक में प्रतिरोध की संस्कृति के माध्यम से इन सवालों को ढूंढा जा सकता है। बौद्धकालीन भारत में जातक कथाओं की एक विकसित परंपरा है। यथार्थ और कल्पना से भविष्य की निर्मिति का साहित्य हमारे यहाँ पुरातन युग से चला आ रहा है। तिलिस्मी, जादुई तथा भूत–प्रेत की कथाओं की परंपरा ने लोकशक्तियों को नई परिभाषा दी। ऐसी कथाएं मनोरंजन के साथ–साथ वर्चस्व के बरक्स अपनी काल्पनिक शक्ति के द्वारा लोक में मौजूद दलित प्रश्नों व समस्याओं को रेखांकित करती हैं। थेरिगाथाएं बुद्धकाल में महिलाओं द्वारा रचित सबसे पुराना साहित्य है। इनमें नारी के मन में निहित प्रतिरोध के विभिन्न प्रकारों की बानगी देखी जा सकती है।

हमारी सामाजिक संरचना विभिन्न स्तर पर विभाजित है। भारतीय समाज रचना चूंकि जातियों, समुदायों, धर्मों में विभक्त है, इसीलिए वर्चस्व एवं प्रतिरोध के विभिन्न स्तर और समीकरण देखने को मिलते हैं। कहने का आशय यह है कि लोक विभिन्न स्तरों पर विभाजित है। हिंदी साहित्य इतिहास लेखन की परंपरा में लोक को 'लोकधर्म' के आलोक में व्यवस्थित करने की कोशिश की जाती रही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. नामवर सिंह ने 'लोकधर्म' को अपने–अपने ढंग से व्याख्यायित किया है। यहाँ 'लोकधर्म' को एक विचारधारण के रूप में (साधारण जनों के विद्रोह की विचारधारा – नामवर सिंह) इसकी परंपरा को खोज रखा है। 'लोक धर्म' किसी के यहाँ मर्यादा पालन का धर्म माना गया तो किसी के यहाँ लोक 'विद्रोह' का। कथित वरिष्ठों के लिए परंपरा, रीतिरिवाज कर्मठता, आडंबर और अस्पृश्यता का व्यवहार लोकधर्म है क्योंकि इसी के चलते वे अपना श्रेष्ठत्व बरकरार रखते आए हैं। लेकिन लोकाचार को सहते हुए बहिष्कृतों का जीवन नरकतुल्य करने वाली परंपरा रूढ़ियों, धर्म और आडंबर के विरोध में संघर्षरत सामान्य जन (अछूत, वंचित) विद्रोह का रास्ता अपनाकर एक प्रतिरोधी संस्कृति का निर्माण करते रहे हैं।

शिक्षा, शास्त्र और समाज से बहिष्कृत, वंचित समाज एवं जनसमूह की मानसिक अभिव्यक्ति का माध्यम लोकथाएं ही रही होंगी जो प्रभुत्व के विरुद्ध चुनौती देती रही होंगी। मुहावरे, लोकोक्तियाँ, लोककथाएं, लोकस्मृतियाँ लोकशक्ति की प्रवृत्तियों को पुष्ट करती हैं। वर्ण–व्यवस्था तथा शोषण के विभिन्न औज़ारों और जड़ मानसिकताओं के विरुद्ध लोक में प्रतिरोध की परंपरा का प्रामाणिक इतिहास अभी लिखा जाना बाकी है। समसामयिक दलित आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि बुद्ध, कबीर, फुले और बाबासाहेब से तैयार होती है। इतने लंबे पड़ावों के बीच दलित जनमानस द्वारा लोक में वर्चस्व के विरुद्ध चेतना का भाव अवश्य रहा होगा। समकालीन कहानी से पहले की कहानी का ढांचा अलग जरूर था लेकिन वही दलित जनमानस की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम था।

दलित वर्ग में शिक्षा ज्ञान से आई चेतना ने कहानी लेखन का तेवर बदला है और इस तेवर को ऊँचाई दी है आंबेडकरवादी विचारधारा ने जादुई, तिलिस्मी, भूत–प्रेत अंधविश्वासों और कर्मकांडों से मुक्त किया है, समतावादी विचारधारा ने। दलितों की छवि को विद्रूप बनाने वाली कहावतों, लोकोक्तियों को झूठा साबित किया है, दलित विमर्श ने। इस संदर्भ में आधुनिक हिंदी दलित का तेवर और सरोकार बिल्कुल स्पष्ट है। दलित कहानियों में सवर्ण पुरुषों द्वारा घर के भीतर अपनी ही स्त्रियों के शोषण की दासता और मुक्ति के स्वर खोजे जा सकते हैं। असमानता ओर अन्याय का पुरजोर विरोध और उसका खात्मा दलित कहानियों की विषय–वस्तु है। लोककथा में रचे गए मिथकों को रूपांतरित–कायांतरित कर चेतना के ओज से भरी हुई दलित कहानियाँ तर्क शक्ति समाज निर्मित करने की ओर उन्मुख हैं।

7.3 दलित कहानी की कथावस्तु

कहानी की संवेदना और उसकी निर्मिति की पृष्ठभूमि कथावस्तु का मूल आधार है। कहानी की बनावट, बल्कि समग्र ढाँचा कथावस्तु की नींव है। सामान्य हिंदी कहानी से भिन्न दलित कहानियों के रचनात्मक वैशिष्ट्य को समझे बगैर आप दलित कहानी की कथावस्तु को ठीक से नहीं परख सकेंगे। इसलिए जरूरी और प्रासंगिक यह है कि एक ही भाषा के भीतर के अंतर और अंतर्विरोधों को भी समझा जाए। इसके लिए विवेकसम्मत, तर्कपूर्ण एवं प्रमाणिक इतिहास बोध आवश्यक है। वर्चस्व की संस्कृति का इतिहास, उसका विकास और उसके प्रभावों की पड़ताल किए बगैर आप दलित कहानियों के विन्यास को नहीं समझ सकते। हिंदू–व्यवस्था के ढांचे की महीन बुनावट और उसके दुष्प्रभावों को दलित चेतना ने चिन्हित किया है। शोषण के जितने भी स्वरूप हो सकते हैं दलित लेखन ने उसे बेनकाब किया है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के मिथकीय कथा से लेकर आज तक के सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक–राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का पुनर्विवेचन और विश्लेषण ने दलित कहानी की कथावस्तु को नवीन स्वरूप दिया है। दलित कहानियाँ मात्र दलित जीवन की कहानियाँ नहीं है अपितु सम्पूर्ण भारतीय समाज की विद्रूपताओं, विडंबनाओं की कहानियाँ हैं। दलित कहानियाँ दलितों के दर्द का दस्तावेज़ हैं। जिसमें धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति, परंपरा आदि का सूक्ष्म विवेचन एवं सच्ची आलोचना है।

भारत की वर्ण जाति आधारित व्यवस्था में यातना का लंबा इतिहास है। अलग–अलग कालखंडों में इस व्यवस्था के खिलाफ विरोध और प्रतिरोध होता रहा है। सबसे प्रखर और सुव्यवस्थित संघर्ष फुले और आंबेडकर युगीन काल खंड में देखा जा सकता है। पिछली इकाइयों से आप संघर्ष और आंदोलन के इतिहास को बखूबी समझ चुके हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दलित मुक्ति आंदोलन का स्वर अंग्रेजी औपनिवेशिकता के समय में ही प्रखरता से राष्ट्रीय स्वर बन चुका था। आत्मसम्मान और अधिकारों की प्राप्ति के लिए किए गए संघर्षों के इतिहास को दलित कहानीकार पुनः साकार करता है। क्योंकि आजादी के लंबे अंतराल के बाद भी यातना और उत्पीड़न का सिलसिला थमा नहीं है। आर्थिक उन्नति होने के बावजूद जातिगत भेदभाव बड़े ही भयावह रूप में मौजूद है। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में मौजूद वर्चस्व की नृशंसताएं यथावत् जड़ जमाए हैं। छुआछूत, ऊँच–नीच जैसी विषमताएं आज भी मानवता का मजाक उड़ा रही हैं। असमानता को बनाए रखने वालों की मानसिकता और सत्ता तंत्र के गठजोड़ की राजनीति की भी दलित कहानीकारों ने पड़ताल की है। हिंसा और घृणा आधारित हिंदू व्यवस्था की जगह समता एवं करुणा की आकांक्षा दलित वैचारिकी का आधार स्तंभ है जो बुद्ध से डॉ. आंबेडकर तक के लंबे इतिहास की देन है। आंबेडकरवादी विचारधारा की मौजूदगी दलित कहानी की मूल संवेदना है जिसकी निर्मिति दलित चेतना से हुई है। अस्मिता बोध दलित कहानियों का मूल कथ्य है।

आत्मा–परमात्मा, स्वर्ग–नरक का नकार, पुरोहितवाद का विरोध कर्मकांड, अंधविश्वास, भाग्य–भगवान तथा पुनर्जन्म आदि ब्राह्मणवादी मूल्यों का नकार दलित कहानियों की कथावस्तु को गैर दलित कहानियों से अलग करता है। ब्राह्मणवादी इतिहास और संस्कृति को आंबेडकरवादी चेतना से पुनर्निर्वाचित करने के लिए दलित कहानियाँ बाध्य करती हैं। सभ्यता, संस्कृति और परंपरा की समीक्षा दलित चेतना का अहम् हिस्सा है। वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ एवं अन्य धर्मशास्त्रों एवं पौराणिक गाथाओं में व्यक्त दलित विरोधी छवियों के तिलिस्म को दलित कहानियाँ बेनकाब करती हैं। दमन और वर्चस्व की परंपरा का नकार दलित कहानी की कथावस्तु की महत्वपूर्ण विशेषता है। भारत की

सभ्यता एवं संस्कृति पर गर्व करने वालो को हिंदू–व्यवस्था की बर्बरता–अमानवीयता से साक्षात्कार कराने में सम्पूर्ण दलित साहित्य की अहम भूमिका है। ऐसे में दलित कहानियाँ विषमता मूलक समाज को समता मूलक समाज में तब्दील करने के लिए उत्प्रेरित करती हैं। दलित और गैर-दलित जीवन में मौजूद पितृसत्तात्मकता को प्रश्नांकित करना दलित कहानी के कथ्य एवं संवेदना का अति महत्वपूर्ण पहलू है। दलित स्त्री लेखन में दलित समाज के अंतर्विरोधों के लिए भी पर्याप्त जगह है। दलित कहानियों में जातियों–उपजातियों की मनोवृत्तियों, टकराहटों के संवेदनात्मक पहलुओं को भी विषयवस्तु बनाया गया है। जिसकी चर्चा प्रसंगवश इसी इकाई में आगे की जाएगी।

7-4 nfyr dgkuh dh fof'k"Vrk

भेदभाव और उत्पीड़न का स्वानुभव दलित कहानी के यथार्थ बोध की अभिव्यक्ति है। स्वानुभूति और सहानुभूति का प्रश्न इसीलिए दलित विमर्श के केंद्र में रहा है। कथावस्तु का चुनाव, घटना, चरित्र–चित्रण, देशकाल और सोद्देश्यता को दलित स्वानुभव प्रामाणिकता प्रदान करता है। दलित आत्मकथनों के माध्यम से स्वानुभव के व्यापक दायरे को समझा जा सकता है। अर्थात् दलित साहित्य का स्वानुभव सामुदायिक अनुभव है जो असमानता, भेदभाव और उत्पीड़ित समुदाय की संवेदना को सचेत और चेतनाशील बनाता है। इसीलिए दलित लेखन में विचारधारा का बहुत महत्व है। उपेक्षित होने की पीड़ा, अपमानित होने का दंश, उत्पीड़ित किए जाने की यातना और वंचना का क्रूर अनुभव दलित कहानी की विशिष्टता है। भेदभाव, अस्पृश्यता और जातिवादी ब्राह्मणवादी क्रूरताओं ने दलित जीवन को एक अभिशाप में बदल दिया है, अतः दलित कहानी को इनके जीवन में घिर आया यह अंधेरा ही दूर करना नहीं बल्कि ऐसा उजाला फैलाना होगा जो अन्य वंचितों के दर्द को भी दूर करने के लिए प्रतिबद्धता दर्शाएं। अभावग्रस्तता और शोषण की बारीकी को दलित कहानीकारों ने बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। शिक्षण संस्थानों, सरकारी दफ्तरों एवं ग्रामीण जीवन में दैनिक दिनचर्या में अपमान के दंश, वास्तविकता का रेखांकन दलित कहानी का वैशिष्ट्य है। मजदूरी और किसान जीवन की यथार्थता दलित कहानियों को बहुआयामी बनाता है। गैर–दलित स्त्री के प्रति औरतों के प्रति संवेदनशीलता दलित कहानी के सरोकारों को स्पष्ट करता है।

दलित जीवन संदर्भ और लेखन में बाल शोषण का चित्रण और उसकी विश्वसनीयता दलित आत्मकथनों से प्रभावित होती है। इसलिए दलित कहानी में यह वैशिष्ट्य अलग महत्व रखता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'रिहाई' में लाला का गोदाम वर्णव्यवस्था का कैदखाना है, जहाँ जिन्दगियाँ रोंदी जाती हैं, अवमानित की जाती हैं और नकारे गए इंसान का जीवन जीने को बाध्य करती हैं। सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में दलित वंचितों का जीवन नरकतुल्य अवांछनीय कर दिया है। लेकिन 'रिहाई' कहानी का छुटकू गोदाम में आग लगाकर अंधेरे में नई रोशनी का संचार करता है। विषमता का बीज बोने वाली संस्कृति हाशिए की अस्मिताओं को निरन्तर दरकिनार करती रही है। प्रतिभा और मेरिट का सवाल खड़ा करने वाले लोग आज भी संकीर्णता से उबर नहीं पाए हैं। उस रूप ने उनके दिलोदिमाग में जहर घोल दिया है। शिक्षण संस्थाएं भी ऐसे संस्कार और सोच के लिए दोषी हैं। वहाँ भी विषमता के बीज मौजूद हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'घुसपैठिए' कहानी इसी रूप को उघाड़ती है। सुभाष lksudj dh ekS 'kS{kd laLFkkuksa dh xfjek dks >Bk lkfcr djrh gS& ¼*दलित छात्रों का मेडिकल में आना डी की दृष्टि से घुसपैठ भी*।') यह कहानी उन दलितों को भी कटघरे में खड़ा करती है जो इन झूठ के माध्यम से ऊँचे ओहदों पर पहुँच गए

है, लेकिन उनका कोई सामाजिक सहयोग नहीं मिलता, कोई मार्गदर्शन नहीं मिलता। इस तरह की उदासीनता पर कहानी सवाल खड़े करके उन्हें इस बात का अहसास करती है कि शिक्षा के हर क्षेत्र, विषय, फैकल्टी पर दलितों का बराबर का अधिकार है, जो उन्हें आरक्षण के कारण मिला है।

मजदूर के अन्तर्विरोधों को भी दलित कहानी में विशिष्ट स्थान मिला है। 'मजदूर यूनियन' के कर्मचारियों में जड़ जमाए बैठे जातिवादी संस्कारों को ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'प्रमोशन' में उजागर किया गया जिसमें 'स्वीपर' से 'मजदूर' बन चुका सुरेश, कॉमरेड की उपाधि पाकर गदगद हो जाता है। कॉमरेड, पांडे के इस संबोधन से सुरेश के भीतर घंटियाँ बजने लगती हैं। वह बड़े उत्साह से घटना के बाद खोलने और अन्य सेवाओं में व्यस्त हो जाता है। उसे लगता है कि अब वह स्वीपर नहीं रहा। लेकिन जब केमिकल प्लांट के कर्मचारी कॉमरेड सुरेश के हाथों दूध लेने से मना कर देते हैं तो पुनः वह स्वीपर बन कर रह जाता है। सामाजिक–धार्मिक व्यवस्था की क्रूरता ने मनुष्य से मनुष्य के बीच इतना विभेद करके मानवीयता का मजाक उड़ाया है। एक ऐसी प्रथा जिसमें एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का मल–मूत्र सिर पर ढोने के लिए बाध्य किया जाए और उसे पेशेगत पहचान से जोड़ दिया जाए। श्रम के इस प्रकार किये गये अपमान को वर्गवाद में विश्वास करने वाली मार्क्सीस्ट विचारधारा भी बदल नहीं सकी। मूलतः भेदभाव की बुनियाद जाति व्यवस्था के चलते बरकरार है और यह तब तक संभव नहीं हो सकता जब–तक जाति व्यवस्था को मानने वाले लोगों की सोच में परिवर्तन नहीं आता। अमानवीय प्रथाओं के आज तक भी यथावत् बने रहने पर भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति का गुणगान करने से हम विचलित नहीं होते, एक क्षण रुककर सोचते नहीं कि इन बुराइयों के रहते हुए क्या हमारी संस्कृति को बेहतर संस्कृति बता सकते हैं? इस संदर्भ में दलित कहानियाँ सम्पूर्ण समाज को संवेदनशील बनाकर सोचने पर मजबूर करती हैं और समाज को जवाबदेह बनाती है। इस पेशे से जुड़े हुए लोगों को यदि व्यवसाय के दूसरे कार्यों में लगाया जाता है तो वहाँ भी जातिगत भेद–भाव और अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता है। सफाई कर्मी यदि दूध का व्यापार शुरू करते हैं तो उनसे कोई दूध नहीं लेता है। (हरियाणा प्रदेश से ऐसी रिपोर्ट आई है।)

अस्पृश्यता का अभिशाप शहर से अधिक गांव, कस्बों में रहने वाले दलित झेलते हैं, जिससे मुक्ति अभी भी संभव नहीं हुई है। वहाँ उत्पीड़न का अमानवीय स्वरूप अभी भी सामंतवाद, जातिवाद के रूप में जीवित है। पुलिस प्रशासन, राजनेता, मठाधीश, मुखिया, न्यायप्रणाली अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका के लोकतांत्रिक आधारों की नाकामियों और गठजोड़ को भी दलित कहानियाँ व्यंजित करती है। 'जंगल की रानी', 'यह अंत नहीं', 'सलाम' (ओमप्रकाश वाल्मीकि), 'अपना गांव', 'आवाजें' (मोहनदास नैमिशराय), 'परिवर्तन की बात', 'बदबू' (सूरजपाल चौहान), 'सीलिया संघर्ष' (सुशीला टाकभौरे), आदि कहानियाँ हमारी ग्रामीण और शहरी संस्कृति में व्याप्त जाति–व्यवस्था की जड़ता को बेनकाब करती है। दफ्तरों में सहकर्मियों और बॉस के रिश्तों में जातिभेद की कड़वाहटों को भी दलित कहानियाँ बेबाकी से प्रस्तुत करती हैं। दलित कहानियों की भाषा एवं शिल्प घटना एवं पात्रों के अनुकूल है। उसका अनगढ़पन ही उसकी विश्वसनीयता और प्रमाणिकता का आधार है जो लेखक के स्वानुभव से आया है। सामान्य मुहावरे दलित कहानी में विशिष्ट अर्थ पाते हैं जो पात्र एवं घटना की जीवतंता को कालजयी बनाते हैं। आत्मकथनात्मक शैली में लिखी गई कहानियाँ दलित लेखन की अनूठी विशेषता हैं।

7.5 दलित कहानी के सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकार

दलित कहानी रिरियाहट, याचना एवं निरीहता को पूरी तौर पर नकारती है। यहाँ वेदना का आक्रोश में रूपांतरण है। धर्म और संस्कृति की पवित्रता को चिन्हित कर नैतिकता और आदर्श के मानदंडों को दलित कहानी तोड़ती है। नए मानदंड और सौन्दर्यबोध का सृजन दलित कहानी का साहित्यिक सरोकार है। घृणा और हिंसा के स्थान पर समता, करुणा और भातृत्व का भाव दलित कहानी के सामाजिक सांस्कृतिक सरोकर है। यही दलित कहानी की वैचारिक प्रतिबद्धता भी है। वर्ण–जाति आधारित व्यवस्था का पूर्णतः खात्मा और ईश्वर का नकार दलित कहानी का मुख्य उद्देश्य है। व्यवस्था के क्रूरतम चेहरे को बेनकाब कर नियतिवाद से मुक्त करना दलित कहानी की जिम्मेदारी है। दलित कहानियों में आमूल परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा विद्यमान है। उन कहानियों में भविष्योन्मुखी स्वप्न, एक दृष्टि और एक विकल्प दिखाई देता है – समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का। बाबासाहेब का नारा – 'शिक्षित बनो! संघर्ष करो! संगठित हो' दलित कहानियों में साकार होता हुआ दिखाई देता है। दलित चेतना का विकास और परिवर्तनवादी स्वर दलित कहानी की मूल प्रवृत्ति है।

'यह अंत नहीं' ग्रामीण दलित स्त्री चेतना की प्रामाणिक कहानी है जो कुदृष्टि रखने वाले पर साहित्यिक ढंग से पुरजोर वार करती है और दुश्मन की बेहयाई को कायरता में तब्दील कर देती है। लेखन बड़ी तल्खी से पंचायती राजव्यवस्था की निरर्थकता और उसके दुरुपयोग को महसूस करता है। गाँव का बिसन दलित है, लेकिन वह अगड़ों और समंतों का मोहरा बनकर रह गया है। ऐसे में दलित स्त्री बिरमा को न्याय की दशा व्यर्थ दिखती है। परंतु बिरमा की मुखरता ने सभी में आशा का संचार कर दिया था, सभी ने मिलकर कहा था, ''ना बिरमा..... यह अंत नहीं है तुमने हमें ताकत दी है। हार को जीत में बदलेंगे, लोगों में विश्वास जगाकर, ताकि फिर कोई बिसन मोहरा ना बने।'' दलित कहानीकार ओमप्रकाश वाल्मीकि सामाजिक व्यवस्था के प्रति इतने चौकस हैं कि सिस्टम के हर धागे को उधेड़कर उसकी असलियत से परिचय कराते चलते हैं। डॉ. आंबेडकर ने गांवों को भारतीय गणतंत्र की अवधारणा का शत्रु माना था। उनके अनुसार हिंदुओं की ब्राह्मणवादी और पूँजीवादी व्यवस्था का जन्म भारतीय गांव में ही होता है। डॉ. आंबेडकर का कहना है कि ''भारतीय गांव हिंदू–व्यवस्था के कारखाने हैं। उनमें ब्राह्मणवाद, सामंतवाद, पूँजीवाद की साक्षात अवस्थाएं देखी जा सकती हैं, उनमें स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के लिए कोई स्थान नहीं है।''

दलित कहानियाँ जाति बोध के आभ्यंतरीकरण पर विमर्श का परिवेश रचती हैं। यह दलित का महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है जो दलित लेखकों की जबावदेही तय करता है और दलित कहानी के सामाजिक, सांस्कृतिक सरोकारों को मजबूती प्रदान करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की वैचारिक परिपक्वता का सबूत 'शवयात्रा' कहानी में मिलता है, जब बड़े साहस के साथ दलितों के भीतर के अन्तर्विरोध और आंबेडकरवादी संगठनों के ढोंग को लेखक बेनकाब करता है। दलित कहानी की वैचारिकी उसकी अमूल्य निधि है। दलित कहानीकारों की वैचारिक प्रतिबद्धता और दलित चेतना का प्रसार दलित साहित्य की धरोहर है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'मुम्बई कांड' में वैचारिक प्रतिबद्धता साकार होती है। कहानी का सजग और सचेतन रूप प्रतिशोध एवं प्रतिरोध की बारीकियों को स्पष्ट करता है। कहानी का पात्र सुमेर मुंबई कांड के प्रतिक्रिया स्वरूप जूते की माला लेकर उठ खड़ा होता है, लेकिन कदम बढ़ाते ही उसके मस्तिष्क में विचार कौंधता है, ''अरे! मैं यह क्या कर रहा हूँ। मुंबई में किसी ने मेरे विश्वास पर चोट की और मैं यहाँ किसी की आस्था पर चोट करने जा रहा हूँ। कुछ गांधी को 'बापू'

कहते हैं और आंबेडकर को 'बाबा', वहाँ 'बाबा' कहने वाले मारे गए, यहाँ बापू वाले मारे जा सकते हैं। *'बाबा' कहने वालों पर भी गाज गिर सकती है। जो भी हो मारे तो निर्दोष ही जाएंगे............ नहीं............. यह रास्ता न बुद्ध का है और न ही आंबेडकर का'' ।*

दलित कहानियाँ हिंदू व्यवस्था की जमीनी हकीकत की बानगी प्रस्तुत करती हैं। दलित कहानियों की भाषा और स्तरीयता पर प्रश्नचिन्ह लगाने वाले वर्ग को पुनर्विचार और आत्मालोचन करना चाहिए। दलित कहानी के सरोकारों को, उसकी ऐतिहासिकता और मानवीय पक्षों को जाने बगैर दलित कहानी के संवाद, भाषा–शैली और उद्देश्यों को नहीं समझा जा सकता। वह कहानी ही क्या जो अंतसर को हिला कर न रख दे। आत्मसम्मान, गरिमा और अधिकार के संघर्ष को साकार करती दलित कहानियाँ मनुष्यता का नया पाठ पढ़ाती है। जिसे वर्ण जाति आधारित व्यवस्था ने नीचे धकेल दिया था। दलित कहानी यथास्थितिवाद को तोड़ती है और आंबेडकरवादी विचारधारा के आधार पर चेतनाशील समाज की निर्मिति कर समतावादी अखंड भारत का विकल्प प्रस्तुत करती है।

7-6 lkjka'k

दलित कहानियों ने अपनी विशिष्टता और सरोकारों से सिद्ध किया है कि परंपरागत साहित्य लेखन से वे किस प्रकार भिन्न है – कथावस्तु और विशिष्टता दोनों ही स्तरों पर दलित कहानी का दायरा बहुत विस्तृत है जैसे – समाज के हर वर्ग की उपस्थिति, धर्म से जिरह, साम्प्रदायिकता और वर्ण–व्यवस्था का अंतःसंबंध, शिक्षण संस्थानों में दलितों के प्रति सोच, उनके प्रति व्यवहार, ब्राह्मणवादी मूल्य का नकार, पितृसत्तात्मक व्यवस्था में दलित और गैर दलित स्त्री, शहरी और ग्रामीण जीवन का द्वन्द्व, जाति–उपजाति का द्वन्द्व, इतिहास एवं संस्कृति की पुनर्व्यवस्था, यातना की अभिव्यक्ति, कर्मकांड और ईश्वर का नकार आदि। इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता पर दलित लेखन सजग है। हजारों साल से पीढ़ी–दर–पीढ़ी यातना झेलते हुए एवं शोषणमूलक व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की प्रतिबद्धता दलित कहानी की कथावस्तु, विशिष्टता और सरोकारों में रूपांतरित करती है। वर्चस्व और विषमतापरक व्यवस्था को बराबरी और भाईचारे में तब्दील करने का सपना दिखाती दलित कहानियाँ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सरोकारों से सुस्पष्ट करती हैं। घृणा और हिंसा को करुणा एवं अहिंसा में रूपांतरित करने की आकांक्षा दलित कहानी का महत्वपूर्ण पहलू है। दलित साहित्य की वैचारिकी को समझे बगैर दलित कहानी की संवेदना को नहीं समझा जा सकता। फुले–आंबेडकर के लेखन, आंदोलन एवं संघर्ष की सच्चाई और अर्थवत्ता से जुड़े बगैर दलित कहानी के मर्म को समझना मुश्किल है। दलित कहानियाँ दलित आंदोलन के लंबे इतिहास की देन हैं। विषमताजनक व्यवस्था को बदलकर समतावादी समाज का सपना साकार करना हिंदी दलित कहानी का वैशिष्ट्य है।

इकाई 8 पच्चीस चौका डेढ सौ % vkeiidk'k okYehfd

bdkbZ dh :ijs[kk

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 समकालीन हिन्दी कथा संसार में दलित हस्तक्षेप

8.4 ओमप्रकाश वाल्मीकि का रचना संसार

8.5 पच्चीस चौका डेढ़ सौ : कथा यात्रा के कुछ पहलू

- 8.5.1 दलित उत्पीड़न का समाजशास्त्र और गाँव
- 8.5.2 नये मुक्ति केन्द्रों का ग्रामीण संरचना में प्रवेश

8.6 कथा यात्रा के अन्य पक्ष

- 8.6.1 उत्पीड़न के अनुकूलन में ज्ञान की असहमति
- 8.6.2 श्रम का सफर
- 8.6.3 पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी का द्वंद्व
- 8.6.4 सच का निर्मम साक्षात्कार और रूपान्तरण की प्रक्रिया

8.7 पच्चीस चौका डेढ़ सौ : रचनात्मक हस्तक्षेप के विविध आयाम

- 8.7.1 पूर्व दीप्ति प्रणाली (फ्लैश बैक प्रणाली)
- 8.7.2 चरित्रों का संयोजन
- 8.7.3 भाषा और शिल्प
- 8.7.4 परिवेश चित्रण

8.8 सारांश

8-1 mís';

आधुनिक हिन्दी कहानी की विकास यात्रा में अनेक आस्वादों का संयोजन हुआ, जिसमें यथार्थबोध एक उल्लेखनीय पहलू है। यथार्थबोध के वितान में सत्तर के दशक में जब दलित और स्त्री अस्मिताओं का संयोजन हुआ, तब भले ही पारंपरिक कथा संसार नयी अस्मिताओं के प्रति असहज हुआ, पर धीरे–धीरे एक दौर ऐसा भी आया जब नयी अस्मिताओं ने केन्द्रीयता हासिल की। हिन्दी दलित कथा लेखन में ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों ने जिस नयी प्रभावक्षमता के साथ अपनी मौजूदगी का अहसास कराया वह पाठकों के लिए सर्वथा अपरिचित था। यह मौजूदगी अनेक ढंग से सशक्त थी। आप इस इकाई में ओमप्रकाश वाल्मीकि के कथा कौशल को 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी के माध्यम से समझेंगे। इस इकाई के विस्तृत अध्ययन के बाद आप परिचित होंगे–

- भारतीय ग्रामीण समाज में सदियों से जारी दलित उत्पीड़न के परिदृश्य से;
- आर्थिक स्वाधीनता के कारण बदलते दलित जीवन से;
- अभाव के समाजशास्त्र के कारण यातनाग्रस्त दलित जीवन से;
- बदलाव के प्रमुख स्रोत अध्ययन की सार्थकता से;

- सवर्ण सदाशयता में छुपे कुत्सित इरादे से;
- पुरानी दलित पीढ़ी के सवर्ण अनुकूलन से;
- बदलती पुरानी पीढ़ी के परिदृश्य से;
- कथायुक्ति के रूप में मौजूद फ्लैश बैक प्रणाली (पूर्व दीप्ति प्रणाली) से; और
- भाषा की बिम्बधर्मिता और अन्य विशेषताओं से।

8-2 izLrkouk

ओमप्रकाश वाल्मीकि समकालीन दलित कथा लेखन के सम्मानित हस्ताक्षर हैं। आपके पाठ्यक्रम में उनकी बहुचर्चित कहानी 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' शामिल की गयी है। इस कहानी का कथ्य और रूपबंध अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है, जिसे आप विस्तार से समझेंगे। दलित कथा लेखन की कुछ बुनियादी विशेषताएँ उदाहरण के लिए, सवर्ण वर्चस्ववाद का विरोध या समतामूलक समाज की स्थापना का सपना जैसे स्वरों की अभिव्यक्ति तो प्रस्तुत कहानी में है ही, साथ ही कहानी की कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं, उदाहरण के तौर पर कथा नायक सुदीप पारंपरिक युवा दलित नायकों से अलग है। वह बदलाव के पक्ष में कोरे क्रोध की तात्कालिक अभिव्यक्ति कर अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं करता, वह परिवर्तन की ठोस अन्तर्धारा का हिमायती है। एक अर्थ में वह मितकथन का नायक है। उसी तरह जब उसके पिता सवर्ण अवसरवाद द्वारा निर्मित व्यवस्था से इस कदर अनुकूलित हो जाते हैं कि उन्हें यह अहसास ही नहीं होता कि कुछ गलत हो रहा है। जब नायक सुदीप बिना धैर्य बार–बार अपने पिता को सवर्ण अवसरवाद की असलियत बताता है। कहना न होगा इस प्रक्रिया में उसे पिता के अंध संस्कारों से जूझने में खासी परेशानी होती है। आप इकाई में कथा विन्यास से जुड़े सभी अहम पहलुओं का अध्ययन करेंगे। आइए इन पहलुओं को विस्तार से जानने की कोशिश करें।

8-3 ledkyhu fgUnh dFkk lkfgR; esa nfyr gLr{ksi

लगभग ढाई दशक की दलित हिन्दी कथा यात्रा के अनेक उल्लेखनीय पक्ष हैं। जरूरत इस बात की है कि परिगणन शैली से हटकर उन विशिष्ट पहलुओं से हम रू-ब-रू हों जिनमें हम दलित कथा संसार की अपरिहार्य मौजूदगी के कारणों को समझ सकें। दलित कथा लेखन की शुरुआत मराठी के प्रभाव से शुरू हुई, पर धीरे–धीरे दलित कथा लेखन ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व अर्जित किया। यानी हिन्दी क्षेत्र की विशिष्टताओं को दलित कथा ने उपजीव्य के रूप में ग्रहण किया। दलित कथा लेखन की यात्रा में अब तक शामिल रचनाकारों की तीन पीढ़ियाँ नजर आती हैं। पहली पीढ़ी के कथा लेखकों में मुख्य स्वर, पारंपरिक हिन्दी कथा संसार से खुद को विशिष्ट कथा लेखकों के रूप में स्थापित करने का था। जातिगत शोषण और उसके अमानवीय रूपों से अवगत कराने के साथ ही उन कथा लेखकों ने वर्णवादी पवित्र धारणाओं को पूज्य आस्थाओं को प्रश्नबिद्ध किया। इन कथाकारों का मुख्य स्वर आक्रोश और विद्रोह का था। दूसरी पीढ़ी के कथाकारों ने लेखन में कुछ नये सरोकारों को शामिल किया। मसलन दलित स्त्री के तिहरे अभिशाप (पितृसत्ता, जातिगत उत्पीड़न और आर्थिक उत्पीड़न) को पहली बार मुखर रूप से इसी पीढ़ी ने कथा सरोकार बनाया। उसी तरह कथा शिल्प में भी दलित कथाएँ पहले से कही ज्यादा प्रौढ़ हुई। तीसरी पीढ़ी के रचनाकारों को दलित कथा लेखकों की अद्यतन पीढ़ी कह सकते हैं। भूमंडलीकरण के प्रभाव में पहले से

कहीं अधिक चुनौतियों का सामना करती दलित दुनिया, पारंपरिक वर्ण आभिजात्य से नये बाजार का गठजोड़ और नये महत्वपूर्ण शक्ति केन्द्र के रूप में उभरा समकालीन राजनीति का दलित चेहरा, इन सब पर नयी पीढ़ी ने तीक्ष्ण निगाह रखी। यह कहना मुनासिब होगा कि दलित कथा लेखन की तीनों पीढ़ियों का अवदान अलग–अलग तरीके से उल्लेखनीय है। विषय चयन की ताज़गी और कहने की नयी शैली ने समकालीन कथा लेखन में दलित कथा संसार को मुख्यधारा के विमर्श में प्रतिष्ठित किया है।

8-4 vkseizdk'k okYehfd dk jpuk lalkj

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून 1950 को हुआ। वे मूलतः बरला ग्राम के निवासी थे। यह गाँव पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर ज़िला में अवस्थित हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि समकालीन दलित कथा लेखन के ऐसे कथाकार हैं, जिनके बिना दलित कथा लेखन का कोई वृत्त नहीं बन सकता। वाल्मीकि जी दलित रचनाकारों की पहली पीढ़ी के सर्जक है। दलित लेखन परिदृश्य की शुरुआत आत्मकथा लेखन से हुई थी। वाल्मीकि जी की आत्मकथा 'जूठन अपने नये सरोकारों और शिल्प की नयी भंगिमाओं के कारण उस दौर की बेहद उल्लेखनीय रचना बनी। उन्होंने विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की। उन पर एक नजर डालना जरूरी होगा। 'सदियों का संताप' और 'बस्स! बहुत हो चुका' उनके बहुचर्चित काव्य संग्रह है। 'सलाम' और 'घुसपैठिए' उनके महत्वपूर्ण कहानी संग्रह है। अनेक कृतियाँ उनके संपादन में भी छपी हैं। उन संकलनों के नाम है – 'दर्द के दस्तावेज़', 'इन दिनों' और 'उत्तर हिमानी'। तीनों रचनाएँ काव्य – संग्रह है। उनकी आलोचना पुस्तक 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' अपने ढंग की उल्लेखनीय कृति है। इसके अतिरिक्त उनकी रुचि रंगमंच में भी है।

वाल्मीकि जी के रचनात्मक अवदान को अनेक संस्थाओं ने सम्मानित किया है। 1993 में उन्हें डॉ. आंबेडकर राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित किया गया। 1995 में परिवेश सम्मान और 1996 में जयश्री सम्मान से भी वे नवाजे गये। उन्होंने प्रथम हिन्दी दलित लेखन साहित्य सम्मेलन नागपुर की अध्यक्षता भी की। उनकी रचनात्मक यात्रा जारी है।

8-5 iPphl pkSdk M<s lkS % dFkk ;k=k ds dqN igyw

'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' इस अर्थ में उल्लेखनीय कहानी है कि यह बेहद मारक ढंग से सवर्ण दुष्चक्र की अमानवीयता और उसके कुत्सित इरादे को बेनकाब करती है। यह उन दलित कहानियों से अलग है जो घटनाओं और विचारों को फौरी तौर पर कथा–विन्यास में शामिल कर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर देती है। जैसा कि इस इकाई के आरंभ में कहा गया था कि कथा में मितकथन की कलात्मकता मौजूद है, यह भी कहानी की एक उल्लेखनीय विशेषता है। नायक सुदीप नयी पीढ़ी का वह दलित है जो बुजुर्ग पीढ़ी की समझ को समग्रता में महसूस करता है। यही कारण है कि वह पिता के अनुकूलन पर क्रोध की बजाय उन बिन्दुओं की असलियत को सामने लाने की कोशिश करता है जिनसे पिता जीवन भर कर्ज के बोझ तले दबे रहे। गाँव का चौधरी मुसीबत में पड़े सुदीप के पिता की आर्थिक सहायता सौ रुपये देकर करता है। पर जब पिता रुपये वापस करने जाता है तब चौधरी कहता है पच्चीस चौका सौ नहीं डेढ़ सौ होता है। चूँकि पिता को सौ से अधिक गिनती नहीं आती थी, लिहाजा वे चौधरी की असलियत को समझ नहीं पाते। पिता कई गुना ज्यादा रुपये चुकाते हैं। पिता को चौधरी पर विश्वास है। यही कारण है कि बच्चे सुदीप द्वारा पहाड़े पढ़ने के वक्त जब

वह कहा जाता है कि पच्चीस चौका सौ, तब पिता आग बबूला हो जाते हैं और सुदीप को सौ की जगह डेढ़ सौ याद करने के लिए कहते हैं। सुदीप जब बड़ा होकर पहली तनख्वाह लाता है, तब वह रुपयों की अलग–अलग ढेरी लगा पिता को बार–बार यह विश्वास दिलाने में सफल होता है कि वह सही था। अब पिता को अनपढ़ होने की गलती पर गहरा पछतावा होता है और चौधरी के प्रति तीव्र घृणा का भाव। कहानी सुंदरता के रूपान्तरण की प्रक्रिया को प्रकट करती है। आवश्यकता इस बात की है कि कहानी की विशेषताओं पर और भी विस्तार से बात की जाय।

8-5-1 nfyr mRihM+u dk lekt'kkL= vkSj xk¡o

भारतीय समाज में दलित उत्पीड़न की सैकड़ों साल पुरानी परंपरा रही है। गाँव का पूरा समाजशास्त्र श्रमशील दलित बहुजन के उत्पीड़न और शोषण पर आधारित है। इतना ही नहीं प्राकृतिक संसाधनों पर भी गाँव के आभिजात्य यानी सवर्ण वर्ग ने कब्ज़ा जमा रखा है। गाँव के दक्षिण में दलित बस्ती का होना आम बात है। गाँव के स्कूल में सवर्ण मानसिकता इतनी सामान्य स्थितियाँ मान ली गयी थीं कि लंबे समय तक इस ओर लोगों का ध्यान ही नहीं गया। कहानी का नायक भी इन विद्रूपताओं का सामना करता है, जिसे कथाकार ने बखूबी चित्रित किया है। जब नायक सुदीप पहली मर्तबा स्कूल जाता है तब वह और उसके पिता बेहद सहमें हुए हैं। स्कूल में दलित उपस्थिति असामान्य घटना के रूप में चित्रित है। उसी तरह सुदीप जब अपनी प्रतिभा के बल पर स्कूल में पहचान बनाने में सफल होता है, तब भी सवर्ण अध्यापकों से प्रशंसा नहीं मिल पाती। वह गणित में सबसे ज्यादा होशियार है। गणित के अध्यापक ब्राह्मणवादी मानसिकता से संचालित हैं। पिता के दबाव में आकर जैसे ही विद्यार्थी सुदीप पच्चीस चौका डेढ़ सौ कहता है, वैसे ही अध्यापक की त्यौरियाँ चढ़ जाती हैं, और शुरू हो जाता है जातिगत उत्पीड़न का दौर। जब सुदीप बताता है कि पच्चीस चौका डेढ़ सौ उसके पिता ने बताया है, तब अध्यापक शिवनारायण मिश्रा आपे से बाहर हो जाते हैं। बकौल लेखक उन्होंने चीखते हुए कहा, 'अबे चूहड़े के, आगे बोलता क्यूँ नहीं? भूल गिया क्या .... अबे कालिए, डेढ़ सौ नहीं सौ...सौ! '.............' मास्टर शिवनारायण हत्थे से उखड़ गया। खींचकर एक थप्पड़ उसके गाल पर रसीद किया। आँखे तरेर कर चीखा, 'अबे, तेरा बाप इतना बड़ा बिदवान है तो यहाँ क्यों अपनी माँ.... आया है। साले, तुम लोगों को चाहे कितना भी लिखाओं, पढ़ाओ रहोगे वहीं के – वहीं ... दिमाग में कूड़ा करकट जो भरा है। पढ़ाई–लिखाई के संस्कार तो तुम लोग में आ ही नहीं सकते। चल बोल ठीक से ...... पच्चीस चौका सौ.... स्कूल में थोड़ी सी तारीफ क्या होने लगी, पाँव ज़मीन नहीं पर पड़ते। ऊपर से ज़बान चलावे है। उलटकर जवाब देता है।' इस तरह के अनेक प्रसंगों की मौजूदगी ग्रामीण जीवन का यथार्थ है। कहानी में ऐसे प्रसंगों की मारक अभिव्यक्ति है। कथानायक को जब भी उत्पीड़न का कोई दृश्य दिखता है, तब उसे लगातार उन दृश्यों की याद आती है जिसका सिरा ग्रामीण जीवन में उपस्थित दलित उत्पीड़न से जुड़े समाजशास्त्र से हैं।

8-5-2 u;h eqfDr dYiuk dk xzkeh.k lajpuk esa izHkko'k

उत्पीड़न के समाजशास्त्र पर उस समय अंकुश लगना शुरू हुआ, जब दलित मुक्ति की नयी अवधारणाएँ सामने आयीं। निश्चित रूप से उसका एक महत्वपूर्ण कारण था शहर और गाँव का एक–दूसरे के करीब आना। इस कहानी में भी जब नायक सुदीप शहर जाता है, तब उसमें नयी तरह की समतामूलक समझ का आविर्भाव होता है। गाँव जाकर वह अपनी समझ के आलोक में पिता के जीवन से जुड़े, अंधसंस्कारों को प्रश्नबिद्ध करता है। नायक ऐसा दलित पात्र है जो पढ़ा–लिखा है। उसके पढ़े–

लिखे होने का असर यह होता है कि वह ग्रामीण जीवन में हस्तक्षेप करता है। इसका तात्कालिक नतीज़ा यह निकलता है कि प्रतीक रूप में ही सही पुरानी पीढ़ी यानी उसके पिता अपने संचित संस्कारों से मुक्ति पाने की शुरुआत करते हैं। यानी ग्रामीण जीवन की संरचना में एक भारी बदलाव का आगाज़ होता है। कहना न होगा नये मुक्ति केन्द्रों की मौजूदगी ने ग्रामीण यथार्थ को अनेक रूपों में बदलना शुरू किया।

8-6 dFkk ;k=k d vU; i{k

कथा यात्रा की अनेक रंगते हैं, जिनमें कुछ का अध्ययन हम लोगों ने किया। आइए, कुछ अन्य पक्षों को जानें। ज्ञान की तपिश, आर्थिक स्वाधीनता का बल, श्रम का सफर, सच के वास्तविक स्वरूप की पहचान जैसी अनेक स्थितियाँ कथा-विन्यास में इस तरह पिरोई गयी हैं कि पाठक सामाजिक–आर्थिक जटिलताओं को बखूबी समझने लगता है। दलित जीवन की पीड़ा और मुक्ति संदेशों को समझने में उन स्थितियों का विश्लेषण सहायक है। कहानी के उन विभिन्न पक्षों जैसे – उत्पीड़न के अनुकूलन में ज्ञान की असहमति, श्रम का सफर, पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी का द्वंद्व, सच का निर्मम साक्षात्कार और रूपान्तरण की प्रक्रिया आदि को देखना जरूरी है।

8-6-1 mRihM+u d vuqdwyu e Kku dh vlgefr

ग्रामीण–जीवन के विभिन्न पक्षों में सदियों से जारी उत्पीड़न के पीछे सबसे बड़ी भूमिका दलितों को ज्ञान से वंचित रखने की साजिश से है। ज्ञान के दुर्ग में श्रमशील दलित बहुजन के प्रवेश को प्रायः निषिद्ध ही रखा गया। धीरे–धीरे ही सही दलित समुदाय को यह बात समझ में आने लगी कि उनकी मुक्ति के लिए सबसे जरूरी है, उनका ज्ञान की दुनिया में प्रवेश। कहानी में कथानायक सुदीप के पिता को लगता है कि जब तक उसका बेटा पढ़ेगा नहीं, तब तक उसकी तथा उसके परिवार की मुक्ति नहीं है। वह जब सुदीप को स्कूल में दाखिला दिलवाने ले जाता है, तब मास्टर फूलसिंह से विनती करता है – 'मास्टर जी इस जातक (बच्चे) को अपणी सरण में ले लो। दो अच्छर पढ़ लेगा तो थारी दया ते यो बी आदमी बण जागा। म्हारी जिनगी बी कुछ सुधार जागी।' फिर सुदीप का दाखिला हो गया। जैसे–जैसे समय बीतने लगा, उम्मीदें परवान चढ़ने लगीं। पिता को अभावग्रस्त जिन्दगी में सुदीप की पढ़ाई ताज़ा हवा के झोंके की तरह लगने लगी। कथा के एक मार्मिक दृश्य पर कहानीकार की नज़र इस तरह जाती है – 'पिताजी बाहर से थके – हारे लौटे थे। उसे पच्चीस का पहाड़ा रटते देखकर उनके चेहरे पर संतुष्टि के भाव तैर गये थे। थकान भूलकर वे सुदीप के पास बैठ गये थे।' उसी तरह सुदीप भी अपनी कुशाग्र बुद्धि के बल पर स्कूल में अलग तरह से छवि बनाने में सफल हुआ। अर्से बाद भी कथानायक को उन दिनों की स्मृतियाँ भाव–विभोर कर देतीं। कहानी में अपने उन दिनों को याद करते हुए वह सोचता है – 'उसकी स्मृति में स्कूल के दिन एक के बाद एक लौटकर आने लगे। दूसरी कक्षा तक आते–आते वह अच्छे विद्यार्थियों में गिना जाने लगा था। तमाम सामाजिक दबावों और भेदभावों के बावजूद वह पूरी लगन में स्कूल जाता रहा। सभी विषयों में यह ठीक–ठाक था। गणित में उसका मन कुछ ज्यादा ही लगता था।' यह ज्ञान का ही कमाल था कि वह समझने में सफल होता है कि चौधरी के शोषण का सिलसिला कैसे गाँववासियों खास कर दलित समुदाय को अपनी गिरफ्त में ले लेता है। वह शोषण–तंत्र को छिन्न–भिन्न करने में सफल होता है।

8-6-2 Je dk lQj

मुक्ति का कोई भी सपना श्रम की गरिमामय मौजूदगी के बिना संभव नहीं। नायक सुदीप इस बात को बखूबी समझता है। कहानी में अभाव के उन दृश्यों का चित्रण है, जिनके चलते सुदीप के घर के रोज़मर्रा के जीवन में परेशानियाँ आती रहती हैं। यह अभाव ही था कि सुदीप के पिता को अपनी पत्नी के इलाज के सिलसिले में चौधरी से लिए गये उधार के मकड़जाल में फंसना पड़ा। परिवार अपने अनुभवों से यह बखूबी समझ गया था कि अभाव मुक्ति का एक ही उपाय है कि ज्ञान के साथ श्रम के रिश्ते को सन्नद्ध किया जाय। सुदीप ने अध्ययन के दौरान खूब श्रम किया और परिवार के अवभावग्रस्त जीवन को बदलने का सपना देखा, जिसे उसने पूरा भी किया। श्रम का यह सफर पाठकों को उस समय बेहद निखरा हुआ लगा, जब कथानायक को पहली पगार मिली और वह उस पगार को लेकर अपने घर चला। यह घटना और भी अर्थपूर्ण उस समय बन गयी, जब नायक सुदीप ने ज्ञान का उपयोग सवर्ण अवसरवाद को बेनकाब करने के लिए किया। श्रम के इस सफल प्रयास ने नये तरह की दलित दृष्टि को संभव किया।

8-6-3 iqjkuh ih<h vkSj u;h ih<h dk }a}

'पच्चीस चौंका डेढ़ सौ' कहानी में पीढ़ियों का द्वंद्व भी प्रभावी ढंग से चित्रित हुआ है। कथा-विन्यास की सुदंरता इस अर्थ में उल्लेखनीय है कि पीढ़ियों का द्वंद्व तो चित्रित है पर कहीं संबंधों में तनाव नहीं आया है। कथाकार ने असहमति का पहला दृश्य उस समय चित्रित किया है, जब पहाड़ा याद करते समय सुदीप किताब में लिखे के मुताबिक पच्चीस चौका सौ कहता है। पर सुदीप के पिता को बेटे का ऐसा पढ़ना गलत लगता है। इसके पीछे सवर्ण अवसरवाद की वह भूमिका है, जिसके तहत चौधरी ने अपने निहित स्वार्थ के कारण रुपये एंठने के चक्कर में कर्ज़दार सुदीप के पिता को पच्चीस चौका सौ की जगह पच्चीस चौका डेढ़ सौ बताया। दूसरी तरफ पिता को गिनती नहीं आती थी। लेकिन वह चौधरी के अहसानों तले खुद को दबा महसूस करते थे। उन्हें यह भी लगता था कि जो मुसीबत के समय काम आया वह भला कैसे गलत हो सकता है। उन्हें लगता था कि मास्टर मिश्र चौधरी से अधिक भला कैसे जान सकते हैं। पिता सुदीप को पढ़ते समय जब उसके द्वारा यह बोलते हुए सुनते हैं– 'पच्चीस चौका सौ'। तब उनकी त्यौरी चढ़ जाती है। वे बोले, 'नहीं बेटे.. पच्चीस चौका सौ नहीं .... पच्चीस चौका डेढ़ सौ .....'। सुदीप ने असहमति व्यक्त करते हुए अपनी किताब की नजीर दी। लेकिन पिता को चौधरी की बात सही और किताब की बात गलत लगती है, और कहा, 'तेरी किताब में गलत भी हो सके नहीं तो क्या चौधरी झूठ बोलेंगे? तेरी किताब से कहीं ठाड्डे (बड़े) आदमी हैं चौधरी जी। उनके धोरे (पास) तो ये मोट्टी–मोट्टी किताबे हैं......... वह जो तेरा हेडमास्टर है वो बी पाँव छुए हैं चौधरी जी के। फेर भला वो गलत बतावेंगे मास्टर से कहणा सही–सही पढ़ाया करे...।' इतना ही नहीं पिता ने सुदीप को एक–थप्पड़ भी रसीद दिया। यह बात कील की तरह सुदीप के मन–मस्तिष्क में टंग गयी। वह सोते–जागते, दिन रात इसी चिंता में रत रहने लगा कि कैसे पिता की गलतफ़हमी को दूर करे?

8-6-4 lp dk fueZe lk{kkRdkj vkSj :ikUrj.k dh izfØ;k

कहानी का सबसे उल्लेखनीय पक्ष हैं रूपान्तरण की प्रक्रिया का मार्मिक चित्रण। कहना न होगा रू-ब-रू होने की इस प्रक्रिया में भविष्य के दलित समाज की यह अकुलाहट दिखायी देती है जिससे सदियों के संताप से मुक्ति का सपना सक्रिय है। जब सुदीप

पहला वेतन लेकर घर पहुँचता है, तब उसके पीछे एक प्रयोजन है। उसके पास बरसों पहले घटी एक घटना की तल्ख याद है। जब सुदीप बच्चा था और पच्चीस का पहाड़ा याद कर रहा था, उसी समय पिता ने झन्नाटेदार थप्पड़ मारा था। कारण वह चौधरी के मुताबिक पच्चीस चौका डेढ़ सौ नहीं कह रहा था। वह किताब में जैसा लिखा था वैसा पच्चीस चौका सौ कह रहा था। वह सवर्ण मानसिकता द्वारा पिता के अनुकूलन की दुनिया से वैयक्तिक रूप से जूझता है। यह द्वंद्व उसे बेहद लंबे समय तक सालता है। यह लंबा सफ़र तब समाप्त होता है, जब वह पिता को अपने पहले वेतन से प्राप्त रुपये को कई भागों में बाँटकर यह विश्वास दिलाने में सफल होता है कि पच्चीस चौका डेढ़ सौ नहीं बल्कि सौ होता है। कहना न होगा पिता को गहरा आघात पहुँचता है। उन्हें यह आघात सवर्ण सत्ता द्वारा लंबे समय तक किये गये इस्तेमाल के कारण होता है। वह रूपान्तरण यानी सवर्ण अनुकूलन से मुक्ति की युगांतकारी घटना तब घटती है जब सुदीप के प्रयास से वे सच का निर्मम साक्षात्कार करते हैं। कहानीकार की नज़र में यह विश्वास में छले जाने की गहन पीड़ा थी। बकौल कहानीकार, पिताजी के हृदय में जैसे अतीत जलने लगा था। उनका विश्वास, जिसे पिछले तीस–पैंतीस सालों से वे अपने सीने में लगाये चौधरी के गुणगान करते नहीं आघाते थे, आज अचानक काँच की तरह चटककर उनके रोम–रोम में समा गया था। उनकी आँखों में एक अजीब–सी वितृष्णा पनप रही थी, जिससे पराजय नहीं कहा जा सकता था, बल्कि विश्वास में छले जाने की गहन पीड़ा भी कहा जायेगा।' यह रूपान्तरण कथा की वह धुरी है, जहाँ दलित चिंतन की नयी समझदारी की आँच है। यह दो पीढ़ियों का मिलन बिन्दु भी है, जहाँ सामूहिक चेतना की तपन है।

8-7 iPphl pkSdk M<+ lkS % jpukRed gLr{ksi dh fofo/k vk;ke

ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह कहानी संवेदानात्मक दृष्टि से उल्लेखनीय तो है ही, रचनात्मक दृष्टि से भी इस कहनी के अनेक आयाम हैं। जिन पर विस्तार से विचार करना आवश्यक है। कहानी में फ्लैश बैंक प्रणाली का सधा प्रयोग है। भाषा–भंगिमा और परिवेश चित्रण की दृष्टि से भी कथा यात्रा की अनेक रंगते देखने लायक हैं। आइए, इन पहलुओं से रू-ब-रू हों।

8-7-1 iwoZ nhfIr i).kkyh ¼¶yS'k cSd i).kkyh½

पूरी कहानी 'फ्लैश बैंक प्रणाली' में कही गयी है। कथा नायक सुदीप पहली शिक्षित पीढ़ी का दलित लेखक है। उसे अपने बचपन की एक घटना का गहरा मलाल है। वह पिता की गलतफहमी को दूर करना चाहता था। कथाभूमि के विस्तार में कहानीकार ने इस बात की पूरी गुँजाईश रखी है कि वह अतीत और वर्तमान दोनों का सिरा थामे रह सके। कहानी के दूसरे अनुच्छेद में ही कहानीकार ने वर्तमान के उस सिरे को पकड़ने को कोशिश की है जिसका रिश्ता अतीत से जुड़ा है। सुदीप की मनःस्थिति बकौल कहानीकार ऐसी है कि, 'वह वर्तमान मे जीना चाहता था।' लेकिन भूतकाल उसका पीछा नहीं छोड़ रहा था। हर पल उसके भीतर वर्तमान और भूत की रस्साकस्सी चलती रहती थी। 'ध्यान से देखें तो इस तनाव या द्वंद्व में ही कथातत्व का विस्तार है।'

दलित बस्ती में पलने वाले सुदीप का अतीत अनेक यंत्रणाओं का दारुण सफर है। उसका संतोषप्रद वर्तमान अतीत के सिरे को बार–बार छूता है। कथा विस्तार में उन दृश्यों का संयोजन अनेक स्थानों पर है। जैसे–स्कूल की पढ़ाई और नौकरी के बीच

समय और हालात की गहरी खाई को वह पाट नहीं सकता था। फिर भी खाई के बीच जो कुछ भी था, उसे सान्त्वना देकर उसकी पीड़ा को तो वह कम कर ही सकता था। सुख–दुःख के चन्द लम्हे आपस में बाँटकर पीड़ा कम हो जाती है। उसने इस पल के इंतजार में एक लंबा सफर तय किया था। ऐसा सफर, जिसमें दिन–रात और मान–अपमान के बीच अंतर ही नहीं था। तात्पर्य यह है कि कहानी में नायक बार–बार अतीत की ओर लौटता है। उसकी यह यात्रा उस समय खास तौर पर महत्वपूर्ण हो जाती है, जब वह अपने पिता की सोच (सवर्ण अनुकूलन) में बदलाव लाने में सफल होता है। कहना न होगा कथा की कहन शैली पूर्व दीप्ति प्रणाली में महत्वपूर्ण हो उठी है।

8-7-2 pfj=k dk l;ktu

किसी कहानी की सफलता का मुख्य आधार चरित्रों का संयोजन भी होता है। यह जानना लाजिमी है कि ‘पच्चीस चौका डेढ़ सौ’ कहानी में चरित्रों का संयोजन किस तरह हुआ है। कहानी में मुख्यतः तीन पात्र हैं, और गौण रूप में अन्य पात्र भी हैं। मुख्य पात्र के रूप में हम सुदीप, पिताजी और चौधरी को रख सकते हैं तो गौण पात्रों में सुदीप की माँ, मास्टर फूल सिंह, मास्टर शिवनारायण मिश्रा, बस के कंडक्टर और ग्रामीण को रख सकते हैं। सुदीप विवेकवादी नयी पीढ़ी के दलित का प्रतिनिधित्व करता है। यह चरित्र इस अर्थ में भी उल्लेखनीय है कि वह परंपरागत दलित युवक से अलग है। वह पिता के गलत प्रतिक्रिया के बावजूद प्रतिप्रश्न नहीं करता। बल्कि उन कारणों को जानने की कोशिश करता है कि आखिर पिता ने चौधरी की गलतबयानी को सही कैसे मान लिया? वह पिता के सवर्ण अनुकूलन की फाँस को विवेक से हल करने की कोशिश करता है जिसमें वह सफल भी होता है। नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी की खाई को वह विवेक से पाटता है और इस विशेषज्ञता के कारण परंपरागत दलित कहानियों के बीच वह कहानी अपनी अलग दीप्ति के साथ खड़ी होती है। पिता औपचारिक शिक्षा से वंचित पुरानी पीढ़ी के प्रतीक है, जिनका परंपरागत वर्ण–व्यवस्था लाभ उठाती है। चौधरी शोषण भी करता है और पिता उत्पीड़न को उपकृत की श्रेणी में भी मानते हैं। उनकी आँखे उस समय खुलती हैं, जब बेटा सुदीप चौधरी के तथाकथित उपकार की असलियत बताता है। चौधरी काईया चरित्र का प्रतिनिधित्व करता है। पर वह भी परंपरागत काईया चरित्र से अलग है। वह शोषण करता है, पर दया की आड़ में। यह अलग बात है कि वह दया महज दिखावटी है। मास्टर फूल सिंह परंपरागत उच्चवर्णीय अध्यापकों की तरह क्रूर नहीं है। वह सुदीप के दाखिले में भरसक सहायता करता है। मास्टर शिवनारायण मिश्रा उच्चवणीर्य दंभ में फूला हुआ है और जातिगत गालियों में इस तरह चिपका हुआ है, जैसे समाज और शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने की वही कुंजी है। सुदीप की माँ, बस के कंडक्टर और ग्रामीण अन्य चरित्रों के विकास में और कथा विन्यास में सहायक पात्र की भूमिका अदा करते हैं।

8-7-3 Hkk"kk vkj f'kYi

‘पच्चीस चौका डेढ़ सौ’ की सफलता में भाषा की भूमिका उल्लेखनीय है। कहानीकार की सधी भाषा पात्रानुकूल है। नरेटर के रूप में जहाँ भाषा का स्वरूप उभरा है, वहाँ भाषा की बिम्बधर्मिता देखने लायक है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैंः–

‘सुदीप जब भी किसी को गिड़गिड़ाते देखता है तो उसे अपने पिताजी की छवि याद आने लगती है, ऐसे में उसका पोर–पोर चटकने लगता है। जैसे कोई धीरे–धीरे उसके जिस्म पर आरी चला रहा हो।’

पोर–पोर चटखना और धीरे–धीरे जिस्म पर आरी चलाना दोनों बिम्ब दलित उत्पीड़न की शातिर चालों की उस असलियत को बेनकाब करता है, जहाँ उत्पीड़न धीमी गति से जारी रहता है। इतनी धीमी गति को कई बार उसकी गतिशीलता का लंबे समय तक पता ही नहीं चलता। पर दर्द अपना असर दिखाता रहता है।

एक और उदाहरण देखा जा सकता है, जिसमें लपट पूँजीवाद और सामंतवादी गठजोड़ को प्रकट करने के लिए बनैले सुअर बिम्ब का प्रयोग किया गया हैः–

'कण्डक्टर का तोन्दियल शरीर कपड़े फाड़कर बाहर आने को छटपटा रहा था। बनैले सुअर की तरह उसके चेहरे पर पान से रंगे दाँत, उसकी भव्यता में इजाफा कर रहे थे। सुदीप को लगा जंगली सुअर बस की भीड़ में घुस आया है। उसने सहमकर सह यात्री को देखा, जो निरपेक्ष भाव से अपने ख्यालों में गुम था।'

मन की वह स्थिति जहाँ पत्थर की लकीर की तरह कोई बात जाकर अड़ जाती है, उसका चित्रण के लेखक ने बड़े मार्मिक ढंग से किया है–

'नर्म और मासूम बालमन पर एक खरोंच पड़ गई थी, जो समय के साथ–साथ ग्रंथि बन गयी थी। जब भी वह पच्चीस की संख्या पढ़ता या लिखता, उसे पच्चीस चौका डेढ़ सौ ही याद आता।'

कथा नायक को नीले रंग में सुंदरता नजर आना उसकी दलित विरासत के प्रभावी ढंग से मौजूद होने का परिचायक है– 'जलकुम्भी का नीला फूल उसे अच्छा लगता है। इक्का–दुक्का फूल दिखाई पड़ने लगे थे।'

इस तरह के अन्य उदाहरण भी हैं, जिनमें भाषा की बहुविध रंगतों का प्रभावी प्रयोग है। दरअसल ओमप्रकाश वाल्मीकि उन थोड़े से रचनाकारों में है जो अच्छे दलित कवि के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। इसलिए उनकी कहानियों में बिम्बधर्मी काव्यभाषा की सुंदतरा का भी सधा प्रयोग नज़र आता है।

8-7-4 ifjos'k fp=.k

कथाकार की सफलता का एक आधार यह भी होता है कि वह कथा में परिवेश का चित्रण कैसे करता है। 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी में परिवेश चित्रण कथा – न्याय को सटीक बनाने में सहायक है। कथाभूमि अधिकांशतः ग्रामीण परिवेश पर आधारित है। जब कथा नायक लंबे समय बाद अपने घर पहुँचता है। उस समय उसे ग्रामीण परिवेश अपनापे भरा लगता है। गांव का बस स्टैंड, तालाब, वहां की गालियाँ आदि का चित्रण इस तरह से किया गया है, जो ग्रामीण परिवेश को बखूबी प्रकट करता है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं–

'बस गाँव के किनारे फकी। बस अड्डे के नाम पर दो एक दुकानें पान–बीड़ी की, एक पेड़ के तने से टिकी पुरानी सी मेज पर बदरंग आईना रखकर बैठा गाँव का ही बदरू नाई, नाई से थोड़ा हटकर दूसरे पेड़ तले बैठा गाँव का मोची, एक केले अमरूद वाला।'

'जानी–पहचानी चिर परिचित गलियों में उसे बचपन से अब तक बिताये पल गुदगुदाने लगे। इससे पहले उसने कभी ऐसा महसूस नहीं किया था। एक अजाने से आत्मीय सुख से वह भर गया था। अपना गाँव, अपने रास्ते, अपने लोग। अपने मन–ही–मन मुस्कुराकर कीचड़ भरी नाली को लाँघा और बस्ती की ओर मुड़ गया। गाँव बस्ती के बीच एक बड़ा – सो जोहड़ था, जिसमें जलकुम्भी फैली हुई थी। 'कहा जा सकता है कि कथाकार ने परिवेश चित्रण का पूरा ध्यान रखा है।

8-8 lkjk'k

आपने वरिष्ठ दलित कहानीकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' का विस्तार से अध्ययन किया। कहानी की सौन्दर्य दृष्टि और संदेश में आप बदलते भारत की तस्वीर को देख सकते हैं। आप यह भी समझ सकते हैं कि कैसे दलित कहानी का सौन्दर्यशास्त्र पारंपरिक हिन्दी कहानी के सौन्दर्यशास्त्र से अलग है। यहाँ यथार्थ विमुख सौन्दर्य की कुलाँचे नहीं है। वर्ण और जाति को शाश्वत मानने वाली भारतीय परंपरा पर कई प्रश्नचिन्ह लगाते हुए सवर्ण मानसिकता और सवर्ण अवसरवाद को प्रश्नांकित करने का संकल्प मुखर है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 आवाजें %ekgunkl ufe'kjk;

bdkbZ dh :ijs[kk

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 दलित कहानी की विकास यात्रा में मोहनदास नैमिशराय

9.3 दलित-दृ-िट की कथात्मक अभिव्यक्ति : आवाजें

9.4 ग्रामीण जीवन और दलित उत्पीड़न

9.5 पुलिस प्रशासन का जातिवादी रवैया

9.6 दलित राजनीति के उभार के सकारात्मक परिणाम

9.7 सामाजिक रूपांतरण की कठिनाइयां और उम्मीद की रोशनी

9.8 सारांश

9.0 उद्देश्य

दलित साहित्य के कहानी खंड की यह इकाई मोहनदास नैमिशराय की 'आवाजें* कहानी पर आधारित है। इस कहानी के माध्यम से आप दलित रचनात्मकता की विशि-ट मनोभूमि को समझ सकेंगे। यह कहानी आपको उस यथार्थ का ज्ञान कराएगी जो दलित समाज में पिछले कुछ दशकों से निर्मित हो रहा है। एक दलित कहानीकार के किस तरह के सरोकार होते हैं, उन सरोकारों के साथ वह किस तरह पेश आता है, एक मुक्तिकामी समाज के निर्माण में वह किस प्रकार योगदान दे रहा है – इन सबकी जानकारी इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पा सकते हैं। इंसाफ की बहुमुखी लड़ाई में साहित्य की प्रतिबद्धता किस रूप में निर्धारित होती है, प्रतिबद्ध साहित्य अग्रगामी तथा अधोमुखी प्रवृत्तियों के बीच किस तरह विवेक करता है – इन सबका आशय भी स्प-ट होगा। इन सबके अतिरिक्त यह इकाई आपको जिन बिन्दुओं से अवगत कराएगी उन्हें क्रमवार इस तरह रखा जा सकता है :

सामंती और ब्राह्मणवादी परंपराएं किन रूपों में समाज में सक्रिय हैं, वे किस तरह परिवर्तन की तमाम कोशिशों को नाकाम करने में लगी रहती हैं;

ग्रामीण समाज में दलित उत्पीड़न का स्वरूप कैसा है और वे परिस्थितियां कौन सी हैं जिनके रहते यह उत्पीड़न संभव हो पाता है;

दलित समाज में आ रहे बदलाव कौन से हैं, सकारात्मक बदलाओं को चिन्हित कैसे किया जाए और उनकी कमजोरियों का निराकरण कैसे हो;

दलितों को अपने परंपरागत पेशों से जुड़े रहने को सवर्ण समाज किस तरह बाध्य करता है। दलित वर्ग की जातियां एक-एक कर किस प्रकार उन घणास्पद धंधों से अलग हो रही हैं। इसके लिए उन्हें कौन सी तकलीफें सहन करनी पड़ रही हैं;

पुलिस और प्रशासन तंत्र का जातिवादी रूप दलितों के पक्ष में नहीं जा सकता। वह तो उत्पीड़नकारी शक्तियों के साथ खड़ा दिखाई देता है; और

राजनीतिक सत्ता एवं प्रशासन में दलितों की भागीदारी से उनकी स्थितियों में सार्थक बदलाव आया है।

9.1 प्रस्तावना

मोहनदास नैमिशराय हिंदी में दलित रचनाकारों की पहली पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं। इस पीढ़ी के दलित रचनाकारों को घर और बाहर दोनों जगह बाधाओं का सामना करना पड़ा। घर में अगर इन्हें अनुकूल अवसर नहीं मिला तो घर से बाहर मुश्किलों का अंबार लगा हुआ था। हिंदी के अधिकांश दलित रचनाकार ग्रामीण परिवेश से आए हैं। इनकी आर्थिक प-ठभूमि ऐसी नहीं कि ये आसानी से शिक्षा संस्थानों में जा सकें। परिवार और बिरादरी का माहौल भी प्रायः उत्साहवर्धक नहीं रहा। ये किसी तरह स्कूल पहुंचे तो वहां के जातिवादी शिक्षक इन्हें हर संभव हतोत्साहित करने में लगे रहे। सरकारी नौकरी में दलित तबके के जो लोग गए उन्हें कदम-कदम पर तिरस्कार और अपमान सहने पड़े। दलित रचनाकारों की कतियां इन अनुभवों की बेबाक गवाही देती हैं। मोहनदास नैमिशराय का जन्म मेरठ (उ.प्र.) में 5 सितम्बर 1949 को हुआ। आपने एम.ए., बी.एड. तक की शिक्षा ग्रहण की। प्रांरभ में कुछ दिन गाजियाबाद के एक प्राइमरी स्कूल में अध्यापन किया और फिर मेरठ छावनी के एक इण्टर कॉलेज में पढ़ाया। इसके बाद नैमिशराय ने पत्रकारिता का व्यवसाय अपनाया और तमाम पत्र-पत्रिकाओं के संपादक, उपसंपादक रहे। इन पत्रों में प्रमुख हैं ^बहुजन संगठन* (1979-80, साप्ताहिक), ^बहुजन अधिकार* (1981-92, पाक्षिक), ^लोकायन लोकतंत्र* (1993-96, मासिक) और ^न्याय चक्र* (1995-2001, मासिक)। वर्तमान में आप मुख्य संपादक, डॉ. आंबेडकर प्रति-ठान (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार) के रूप में कार्यरत हैं। पत्रकार के रूप में कार्य करने के कारण आप ने सामाजिक जीवन की तमाम रंग रेखाएं देखी हैं और इन अनुभवों से अपने को समद्ध किया है। आपकी प्रकाशित कृतियों की संख्या तकरीबन 30 है। इनमें आत्मकथा ^अपने अपने पिंजरे* (दो भागों में), ^क्या मुझे खरीदोगे*, ^मुक्ति पर्व (उपन्यास) ^अदालत नामा*, ^हैलो कामरेडÞ (नाटक) ^वीरांगना झलकारी बाई* (ऐतिहासिक जीवनी),^सफदर एक बयान*, ^आग और आंदोलन* (कविता संग्रह) तथा ^आवाजें* कहानी संग्रह मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त डॉ. भीमराव आंबेडकर पर आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हैं। आपने दलित आंदोलन का संक्षिप्त इतिहास भी लिखा है। कहानीकार के रूप में आपकी ख्याति ^आवाजें* कहानी संग्रह से हुई। ^आवाजें* कहानी संग्रह में आपकी 13 कहानियां शामिल हैं। यह संग्रह पहली बार 1998 में छपा। इसका दूसरा संस्करण 2002 में सामने आया। पहले संस्करण की भूमिका में मोहनदास नैमिशराय ने अपनी रचना-प्रक्रिया का खुलासा करते हुए लिखा, ßजहां तक इस संग्रह में प्रकाशित मेरी कहानियों की बात है उनके पीछे कोई बौद्धिक विलास या काल्पनिक सुख नहीं है बल्कि एक-एक कहानी की प-ठभूमि में दलित होने का एहसास है। हर एक कहानी लिखने के दौरान मुझे दुर्घटनाओं के आर-पार की जद्दोजहद से जूझना पड़ा है। मैं भीतर-बाहर अंगारा बन दहकता रहा। मेरे शब्द जैसे तपकर बाहर आते रहे।Þ नैमिशराय की लगभग सभी कहानियों में आक्रोश झलकता है। वे पहले तो दलित उत्पीड़न का चित्रण करते हैं। फिर दलितों के विद्रोहात्मक रवैये को दर्शाते हैं। आशावाद से उनकी कहानियों का अंत होता है। इनकी कहानियों के पात्र प्रतिकूल स्थितियों के सामने घुटने टेकते नहीं दिखाई देते।

9.2 दलित कहानी की विकास यात्रा में मोहनदास नैमिशराय

मानव समाज में कहानी कहने सुनने की परंपरा उतनी ही पुरानी है जितनी मानव सभ्यता की अपनी कहानी की शुरुआत। मानव समाज ने कहानी विधा का तमाम रूपों में इस्तेमाल किया है मसलन, वक्त काटने के लिए, मनबहलाव के लिए, रीति-नीति की शिक्षा देने के लिए अमानु-ा परंपराओं की विद्रूपता को उजागर करने के लिए और अपने संचित असंतो-ा की अभिव्यक्ति के लिए। हर युग में अलग-अलग प्रवृत्तियों की प्रधानता हुआ करती है। आधुनिक हिंदी कहानी की तस्वीर पर नजर डालें तो पाएंगे कि यथार्थ की खोज और अभिव्यक्ति इसका प्राथमिक उद्देश्य है। दलित कहानीकारों ने कहानी विधा की यथार्थोन्मुखता को और मांजते हुए उसे सशक्त सामाजिक प्रतिरोध का माध्यम बनाया है। वास्तव में, जब भी कोई सामाजिक आंदोलन पैदा होता है तो आंदोलन से सरोकार रखने वाले रचनाकार उसे अपनी रचनाओं के माध्यम से आगे बढ़ाने का काम करते हैं। दलित आंदोलन का चरित्र और स्वरूप अखिल भारतीय है तथा तमाम भारतीय भा-ााओं के दलित शब्दकर्मी सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं। हिंदी में जिन दलित कथाकारों की चर्चा प्रमुखता से होती है उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, बुद्ध शरण हंस, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम आदि के साथ मोहनदास नैमिशराय भी शामिल हैं। नैमिशराय की कहानियां अपने तेवर में जितनी तल्ख होती है उतनी ही अपने वि-ाय वस्तु के चयन और उसके निर्वाह में सावधान भी। मूलतः पत्रकार होने के नाते नैमिशराय कहानी के ब्यौरों के प्रति खासे सजग दिखाई पड़ते हैं। उनका मकसद है दलित उत्पीड़न की घटनाओं को प्रकाश में लाना। इसके लिए वे तमाम जोखिम उठाते हैं और वास्तविक घटनाओं को अपनी कहानियों का आधार बनाते हैं। नैमिशराय क्योंकि रचनाधर्मी हैं इसलिए वे घटना का चित्रण करके ही संतु-ट नहीं रह जाते। वे घटना की तह तक उतरते हैं, उसके कारणों की अपने ढंग से छानबीन करते हैं और उस मानसिकता को उघाड़ते हैं जिसके चलते ऐसी घटनाओं का सिलसिला थमता नहीं। वे भारतीय समाज के जातिवादी दमन के इतिहास से वाकिफ हैं और सामाजिक जड़ता के कारणों के रूप में इसी जातिवादी मानसिकता को जिम्मेदार ठहराते हैं। वर्ण व्यवस्था की जो सुदृढ़ सांस्कृतिक पीठिका है, उच्चता-निम्नता के जिस बोध को सहज बना दिया गया है उसकी असलियत का पर्दाफाश करना यों तो उनके समूचे रचनाकर्म के केन्द्र में है मगर उनकी कहानियां इसमें हिरावल दस्ते की तरह दिखाई पड़ती हैं। ब्राह्मणवादी व्यवस्था की कारगुजारियों को दर्शाने के लिए नैमिशराय अपनी कहानियों को अतीत में प्रक्षेपित नहीं करते है बल्कि वर्तमान का चित्रण ही इस रूप में करते हैं कि जातिगत दमन का समूचा इतिहास झलक जाता है। समकालीन समाज में जो कुछ हो रहा है, अन्याय और क्रूरता की जो शक्तियां सक्रिय हैं उन का कुछ न कुछ संबंध अतीत से है। इस अतीत को नज़र अंदाज़ करके अपने वक्त को ठीक-ठीक समझना मुश्किल है। नैमिशराय को इस मुश्किल का ध्यान है और वे अतीत को विस्मृत कर अपनी कहानियों की रचना नहीं करते। उनकी लगभग सभी कहानियों की बुनावट और मकसद में समानता है, निरंतरता है और उनका मकसद है जातिवादी व्यवस्था का चित्र उघाड़ना। उनके कहानी संग्रह ^आवाजें* की ^भूमिका* में कमलेश सचदेव ने ठीक ही रेखांकित किया है, ßउनका प्रमुख बल्कि एकमात्र सरोकार दलित वर्ग की पीड़ा को वाणी देना है। उनके साथ होने वाली कोई भी ज्यादती उन्हें तड़पाकर रख देती है। अस्पश्यता, दलित वर्ग की स्त्रियों के प्रति अत्याचार, आरक्षण-विरोधी आंदोलन, वर्णव्यवस्था की अन्य विसंगतियां, कुछ भी न उनकी दृ-िट से चूकता है और न कलम से।Þ लेकिन, यथार्थ का अंकन ही नैमिशराय का अंतिम उद्देश्य नहीं है। वे अपने पाठकों की चेतना को आगे तक ले जाते हैं और उन्हें आमूल बदलाव की मानसिकता की ओर उन्मुख होने को प्रेरित करते हैं। कमलेश सचदेव का यह आकलन आधारहीन नहीं

है कि, ^^गौरतलब यह है कि दलितों की पीड़ा को व्यक्त कर देना मात्र इन कहानियों का लक्ष्य नहीं है बल्कि उनके भीतर सुलगता आक्रोश धीरे-धीरे दहकते विरोध में बदलता दिखाने के प्रति भी मोहनदास नैमिशराय सतर्क रहे हैं। वे आज के दलित की मानसिकता के प्रतिनिधि भी हैं और उसे सही राह पर ले जाने का दायित्व भी अनुभव करते हैं।ß

9.3 दलित-दृ-टि की कथात्मक अभिव्यक्ति : आवाजें

भारतीय समाज में दमन की परंपरा जितनी पुरानी परंपरा प्रतिरोध की भी है। प्रतिरोध की इस परंपरा में एक निर्णायक मोड़ तब आया जब डॉ. भीमराव आंबेडकर की आवाज गूंजी। डॉ. आंबेडकर ने सवर्ण समाज से दया या रियायत की मांग नहीं की। उन्होंने भेदभाव और गैर बराबरी पर टिकी समाज व्यवस्था के आमूल परिवर्तन का मुद्दा उठाया। डॉ. आंबेडकर का कहना था कि परिवर्तन की प्रक्रिया तब तक मुकम्मल नहीं होगी जब तक दलित समाज जागरूक नहीं हो जाता और वह स्वयं अपनी आवाज नहीं बुलंद करता। उनका सूत्र था कि गुलाम को उसकी गुलामी का एहसास करा दो, वह विद्रोह कर देगा। समाज में तथाकथित सवर्ण वर्चस्व तब तक कायम है जब तक दलित समुदाय में असंतो-ा का जन्म नहीं होता। जिस दिन स्थितियों पर दलित समुदाय विचार करेगा, अपनी दुर्दशा के कारण खोजेगा उसी दिन दमनकारी समाजतंत्र संकटग्रस्त हो जाएगा। नैमिशराय की कहानी इसी वैचारिकता से प्रेरित है। आर्थिक रूप से कमजोर होने के बावजूद दलित समुदाय में जो आत्मविश्वास दिखाई पड़ता है वह ^प्रभुवर्ग* की सत्ता को मन से नकारने का परिणाम है। ^आवाजें* कहानी एक पारंपरिक गांव पर आधारित है। इस गांव में मेहतरों का एक टोला है। इस टोले को किसी भी पुराने गांव में आसानी से चिन्हित किया जा सकता है।

टोले के बड़े-बुजुर्ग लोग आपस में सलाह-मशविरा करके तय करते हैं कि अब वे गंदगी की सफाई का काम नहीं करेंगे और न गांव के ठाकुरों के जूठन पर अपना गुजारा करेंगे।

मेहतर टोले के इस निर्णय से ठाकुरों के मुहल्ले में हलचल मच जाती है। ठाकुरों के लिए यह बिलकुल अप्रत्याशित स्थिति है। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ था कि कोई मेहतर खुल्लम-खुल्ला बागी बन जाए।

इस बार तो पूरा मेहतर मुहल्ला ही निर्णय ले चुका है कि वह सवर्णों की गंदगी नहीं उठाएगा। मेहतरों के इस सामूहिक निर्णय को पहले तो ठाकुर औतार सिंह जैसे लोगों ने बहुत हल्के में लिया। उन्हें लगा कि ऐसी बगावत अधिक से अधिक एकाध हफ्ते चलेगी। अंततः मेहतरों को अपने काम पर लौटना ही पड़ेगा। आखिरकार, पेट तो भरना ही पड़ता है और पेट भरने का जरिया हम ठाकुरों के पास है। ठाकुर मुहल्ले से जूठन न जाए तो मेहतरों को भूखे मरने की नौबत आ जाए। लेकिन, दूसरा हफ्ता बीतते-बीतते औतार सिंह को अपनी राय पर पुनर्विचार करना पड़ गया। उन्हें यकीन होने लगा कि मेहतर समुदाय का यह संकल्प इतना कच्चा, आधारहीन और हल्का नहीं है। यह निर्णय हड़बडी में नहीं उठाया गया है। बहुत सोच समझकर ऐसा फैसला किया गया होगा, अन्यथा एक हफ्ते के भीतर ही सभी मेहतर काम पर वापस आ गए होते। अब तो ठाकुर मुहल्ले की हालत यह है कि जगह-जगह कूड़े के ढेर लगे हुए हैं। गंदगी का सर्वत्र पसारा है। नालियां बदबू से पटी पड़ी हैं और आवारा कुत्तों के झुंड घूम रहे हैं। गाँव के सवर्ण समुदाय के लिए मेहतरों का यह अडिग फैसला किसी त्रासद सांस्कृतिक आघात से कम न था। ठाकुरों ने पहले तो अपने रौब का इस्तेमाल करके मेहतरों को सफाई के काम पर वापस लाना चाहा। फिर, उन्होंने थोड़े समझौते के अंदाज में अपने एक कारिन्दे को भेजकर काम निकालना चाहा। मेहतर समाज ठाकुरों की किसी भी चाल के सामने नहीं झुका। अंततः उन्होंने अपना

पुरातन क्रूर चेहरा दिखाया और मेहतरों को तरह-तरह से उत्पीड़ित करना शुरू कर दिया। ठाकुरों को यह बात कैसे सहन होती कि मेहतर भी खुद फैसला कर सकते हैं और द्विजों की सेवा-टहल से इनकार कर सकते हैं। जब शास्त्रों, स्मृतियों ने ही उनके जिम्में सेवा का दायित्व निश्चित कर दिया है तो उसके परिपालन में ढील-कैसे बरती जा सकती है? फिर, इतनी शताब्दियों से अत्याचार करने, दबा कर रखने और उनसे वे सारे काम, जो गन्दे समझे जाते हैं, करवाने की आदत पड़ गई है उसे एकाएक कैसे विस्मृत किया जा सकता है। कहानीकार रचना में दलित सवर्ण टकराहट का दृश्य रचता है। यही इस कहानी का केन्द्रबिन्दु है। टकराहट के बिना यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता। सवर्ण अपनी तथाकथित श्रे-ठता का दंभ त्यागने को तैयार नहीं हैं और स्वाभिमान का बोध हो जाने के बाद दलित समझौता करने, झुकने या पूर्व स्थिति में बने रहने पर राजी नहीं। इस तनाव में ही कहानी संपन्न होती है। ठाकुरों की गुलामगिरी को नकारने के बाद मेहतर भी सिलसिलेवार उत्पीड़न झेलने को अभिशप्त हैं। उनका संकल्प इतना मज़बूत कि ठाकुरों की कोई भी चाल, दमन का कोई भी तरीका सफल नहीं हो पाता। अडिग, अपराजेय संकल्प के साथ कहानी का समापन होता है।

9.4 ग्रामीण thou और दलित उत्पीड़न

जातीय हिंसा और अत्याचार को समाप्त करने के लिए समय-समय पर जो सुझाव दिए गए हैं उनमें एक यह है कि भारत के सभी गांवों का नगरीकरण (अरबनाइजेशन) कर दिया जाए। डॉ. आंबेडकर भी इस समाधान के प्रस्तावकों में से हैं। जो लोग भारतीय गांवों की संरचना से परिचित हैं उन्हें यह समझते देर न लगेगी कि सामूहिक जीवन शैली का लोकतांत्रिक रूप पारंपरिक गांव अपना ही नहीं सकते। पारंपरिक गांवों में सेवक और स्वामी का स्प-ट विभाजन है, अत्याचार की ऐसी अन्तर्धारा है जो अपने बाह्य रूप में बड़ी सहज-सामान्य लगेगी। सभी जाति समूहों की सामाजिक भूमिकाएं तयशुदा हैं और प्रदत्त भूमिकाओं से विचलन की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी गई है। जाति की जो जकड़बंदी ग्रामीण जीवन में दिखाई पड़ती है उसकी व्याप्ति मानसिक से लेकर भौगोलिक स्तर तक है। गांव में सभी जाति-समूहों के मुहल्ले निश्चित होते हैं। सामान्यतः सवर्णों के मुहल्ले घर गांव के बीचों-बीच, पर्याप्त स्थान में बने होते हैं जबकि दलितों के मुहल्ले गांव के बाहर बेहद सिकुड़े-सिमटे रूप में दिखाई पड़ते हैं। अक्सर, यह मुहल्ला गांव के दक्षिणी सिरे पर हुआ करता है। ^आवाजें* में सूचना है कि ßगांव के पूर्वी छोर पर मेहतरों का एक टोला था।Þ आशय यह कि दलित ग्रामीण संरचना में बहि-कृत का जीवन जीने को बाध्य किए जाते रहे हैं। दलित शे-ा समाज से अपने को अलग-अलग समझें और हीनता-बोध के शिकार रहें, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर यह व्यवस्था की गई थी। इस व्यवस्था का एक हिस्सा यह था कि दलित कभी भी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न बन सकें, उन्हें दो जून की रोटी के लिए तरसना पड़े। आर्थिक विपन्नता ने उनकी हालत ऐसी कर दी कि वे बसीठों के घर का जूठन खाकर संतो-ा करने लगे। निर्धनता ने उनकी ज़िन्दगी को नारकीय बनाए रखा। ^आवाजें* में कहानीकार दर्शाता है कि आस-पास होते हुए भी गैर दलितों की दुनिया दलितों की दुनिया से बिलकुल अलग रहा सकती है। एक तरफ तो मेहतरों का टोला है, ßवहाँ मकान के नाम पर कुछ फूस की झोपड़ियाँ तथा आंगन के रूप में गोबर से लिपे-पुते ज़मीन के छोटे-बड़े टुकड़े थे।.....गन्दगी के साम्राज्य के बीच अधिकांश मेहतर बड़ी बेफिक्री से रहते। दूसरी तरफ ठाकुरों की बस्ती थी जो अलग से ही पहचानी जा सकती थी। खूब साफ लिपे-पुते मकान। लोहे के चौड़े दरवाजे। उनके आसपास खूब खाली जगह होती। कोई घर ऐसा न था जिसमें रखी लाठी पर दो-चार तोले चांदी न मढ़ी गई हो। हर महीने उन लाठियों को सरसों का तेल ज़रूर पिलाया जाता था। गांव में वैसे दो-चार घरों में लाइसेंसी बंदूकें भी थीं।Þ

भारतीय समाज में प्रभुवर्ग ने (अन्य समाजों के प्रभुवर्गों की तरह ही) सम्पत्ति और प्राकतिक संसाधनों पर अपना हक जमाया, दूसरे वर्गों को तमाम अवसरों से वंचित किया तथा समाज में अपनी धाक बनाए रखने के लिए सत्ता, वैभव और प्रभुत्व का निरंतर प्रदर्शन भी किया। दलित आंदोलन ने द्विजों के सांस्कतिक वर्चस्व के शास्त्रीय आधारों को भरपूर चुनौती दी साथ ही आर्थिक प्रश्नों को उठाने की आवश्यकता भी समझी। आर्थिक प्रश्नों के अभाव में सामाजिक प्रश्न अधूरे ही रहा करते हैं। प्रसिद्ध दलित रचनाकार शरण कुमार लिम्बाले ने कई वर्-न पहले ठीक ही कहा था कि ßदलित समुदाय के सामाजिक प्रश्न दलित आंदोलन ने प्रमुखता से लिए। लेकिन आगे आते-आते यह आंदोलन भी ठहराव का शिकार हो गया है। प्रश्न उठ रहा है कि इससे आगे कहाँ जाएंगे? तो मुझे लगता है कि अब शोनित-पीड़ित जनता के आर्थिक प्रश्न उठाकर ही आगे बढ़ा जा सकता है।Þ द्विजों की सांस्कृतिक श्रे-ठता बहुत कुछ उनकी आर्थिक स्थिति से तय होती है। उत्पादन के साधनों का पुनर्वितरण वर्चस्व की तमाम परतों को तोड़ने में कारगर हो सकता है। हिंदी के कई दलित रचनाकारों में यह समझ उनकी कृतियों के माध्यम से दिखाई पड़ती है। धर्माधि-ठित वर्ण व्यवस्था ने जाति की पहचान के तहत् व्यवसाय और पेशों का बंटवारा किया। जन्मना अछूतों के लिए गंदगी से जुड़े कामों को करने की बाध्यता को धर्म की धाक दिखाकर स्वीकार करना पड़ा। इसके विपरीत जाने पर धर्मगत कानूनों के द्वारा प्रताड़ना, अत्याचार तथा मृत्युदंड का प्रावधान भी रखा गया। मनुस्मति की निर्मिति इसी उद्देश्य की व्यावहारिक प्रथा थी।

आजीविका के लिए अगर तमाम विकल्प मौजूद हों तो किसी समुदाय या व्यक्ति का दमन सामान्यतः संभव नहीं होता। हमारे समाज के सवर्ण इस बात को शायद प्रारंभ से ही भली-भांति समझ चुके थे। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि समुदायों की पहचान उनके धंधे से तय हो गई। चाहे-अनचाहे लोग कार्य-विशे-न से इस प्रकार संबंद्ध कर दिए गए कि वही उनकी पहचान हो गई। उस पहचान से मुक्त होने की गुंजाइश नहीं छोड़ी गई। जिसे सम्मानजनक कहा जा सकता था ऐसे कार्य तो प्रभुवर्ग ने अपने लिए आरक्षित कर लिए और जिसे घृणित या अपमानजनक माना जाता था उसे तमाम दलित समुदायों के लिए अनिवार्य ठहरा दिया। विकल्पहीनता की लंबी अवधि ने ऐसी मानसिकता रची कि दलित समुदाय का अधिसंख्य हिस्सा तिरस्कृत और लांछित जीवन को अपनी नियति मान बैठा। अब सवर्णों को निश्चिंतता हो गई। बीच-बीच में जब भी प्रतिरोध के स्वर फूटे, उन्हें कभी शास्त्र का भय दिखाकर कभी हिंसा का सहारा लेकर दबा दिया गया। भयरहित प्रतिरोधी स्वर आधुनिककाल में आकर फुले, आंबेडकर, नारायण गुरु आदि के प्रयासों से मुखरित हुए। ऐसे अदम्य स्वरों को रोकने, नज़र अंदाज़ करने या बिगाड़ने की कोशिश तो बहुत की गई मगर कामयाबी न मिली। ^आवाजें* कहानी को इस ऐतिहासिक प्रक्रिया के दस्तावेजीकरण के रूप मे देखा जा सकता है।

भारतीय समाज में आधुनिकता के प्रवेश ने एक नई हलचल पैदा की। इस आधुनिकता के मानक, हालांकि, यूरोप द्वारा तय किए गए थे तो भी हमारे समाज में इससे व्यापक और निर्णायक परिवर्तन घटित हुए। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्यों के आधार पर भारतीय समाज को पुनर्गठित करने की मांग उठी। ब्राह्मणवादी विचार-पद्धति इन मूल्यों से परहेज करना चाहती थी, इनसे बचना चाहती थी लेकिन अंततः उसे भी पुनर्विचार के लिए बाध्य होना पड़ा। आधुनिकतावादी मूल्यों ने दलित समाज को सर्वाधिक प्रभावित किया। दलित विचारक गोपाल गुरु ने आधुनिकता के दलित समाज पर पड़े असर को व्याख्यायित करते हुए लिखा हैः ßदलितों के मामले में आधुनिकता को इस संदर्भ में समझा जाता है कि उसने उन्हें समानता, स्वतंत्रता एवं मर्यादा, आत्मसम्मान तथा मान्यता के अधिकारों की भा-ाा किस प्रकार प्रदान की। पर नई भा-ाा दलितों द्वारा उस दायित्व केन्द्रित

भा-ाा को अस्वीकार किए जाने से ही उभर पाई जिसमें कतिपय नकारात्मक अधिकार निहित थे, जैसे मरे जानवर का कच्चा चमड़ा और मांस पाने तथा जूठा भोजन और उतरे कपड़े पाने के अधिकार। हिन्दू सामंती व्यवस्था में यह सब दलितों को अपमानित करता था। दलितों ने समानता की भा-ाा भारत तथा पश्चिम दोनों ही की मुक्ति-परंपरा से सीखी जिसके फलस्वरूप वे न केवल हिन्दुत्व के बहि-करण मूलक मानकों पर सवाल उठाने को उद्यत हुए, बल्कि उन्हें दक्षता, योग्यता तथा उत्कृ-टता जैसे आधुनिकतावादी आधारों पर अवसरों की संरचनाओं में प्रवेश पाने की प्रेरणा भी मिली। इस प्रकार समानता एवं आत्मसम्मान की भावना ने दलितों का आधुनिकता की तलाश का नैतिक आधार प्रदान किया।Þ (^आधुनिकता की तलाश में दलित*, गोपाल गुरु, कति संस्कति ^सन्धान* अप्रैल-दिसम्बर 2003, नई दिल्ली) यहाँ यह ध्यान दिलाने की ज़रूरत है कि आधुनिकता की चेतना शहरी क्षेत्र के पढ़े-लिखे दलितों में सबसे पहले पहुंची और उनसे होकर ही, बहुत कुछ उन्हीं के प्रयासों से ग्रामीण क्षेत्रों में यत्किंचित फैली। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में इन्होंनें रहन-सहन के शहरी आधुनिक तरीके अपना लिए। उन्होंने परंपरा द्वारा आरोपित अपमानजनक पहचान से छुटकारा पाने के लिए भा-ाा के स्तर पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए जहाँ जरूरी समझा वहाँ अपने तौर-तरीकों में, भा-ाा में परिवर्तन किया। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया का ही हिस्सा है जिसके पीछे संभ्रात समाज उन्हें अपने जैसा समझने लगे और छुआछूत, भेदभाव और अपमान से छुटकारा मिले। ^आवाजें* में यह प्रसंग आया है कि शहर में रहने वाला मेहतर समाज का ही कोई व्यक्ति अपनी बिरादरी के प्रति तिरस्कार पूर्ण रवैया रखता हैः ^^कभी-कभी ऐसा भी होता कि शहर से मेहतरों के टोले में ही कोई बुर्राक कपड़े पहने हुए अप-टू-डेट आता तो दो चार बातें सुनाए बिना वह भी नहीं रहता। उसकी बातों से एक आम शहरी की बू आती।Þ

^आवाजें* कहानी रेखांकित करती है कि शहरी आधुनिकता से शे-ा हिन्दू समाज में शंका और दहशत का माहौल था। आधुनिकता जिन रूढ़ियों को तोड़ रही थी, जिन असमानताओं को मिटाने का प्रयास कर रही थी, उन प्रयासों की बयार गांव-देहात में भी पहुंचेगी ऐसी आशंका व्याप्त हो गई थी। ठाकुर औतार सिंह के यहां काम कर रहा एक बढ़ई इन परिवर्तनों से भयाक्रांत है। वह मानता है कि गांव में हो रहे सारे ^उपद्रव* की जड़ शहर ही हैः

^^छोटे ठाकुर, देखो तो इन ससुरों ने क्या उधम मचाया हुआ है...।Þ

^^क्या भला....?Þ छोटे ठाकुर पूछते हैं।

^^कहते हैं कि हम अब मैला न उठाएंगे। भला सासतरों की बात कोई टाल सकता है क्या? सासतरों में तो यही सब लिखा है न।Þ

^^लेकिन बुढ़ऊ...आजकल सासतरों की बात मानता कौन है.....? ßकुढ़ते हुए छोटे ठाकुर कहते हैं।

^^तभी तो यह हाय-तोबा मची है। कोई छोटे-बड़े का भेद नहीं। पहले इन ससुरों की परछाई से भी दूर रहा जाता था। अलग खाना, अलग पीना। अब तो छोटे ठाकुर, सुना है शहरों के होटलों में एक ही कप में सभी चाय पीवै हैं। कितना बड़ा अन्याय, सारा धरम ही चौपट हो गया।Þ

जाति-भावना की पैठ कितनी गहरी और मजबूत है- यह इस प्रसंग से भली भाँति स्प-ट हो जाता है। हिन्दुओं में बढ़ई जाति शूद्रों में गिनी जाती है। जातिव्यवस्था के टूटने का फायदा उसे कम नहीं मिलेगा लेकिन मेहतरों के मुकाबले वह स्वयं को उच्च पाता है। इसी में वह संतु-ट है। सामाजिक बदलाव का समर्थन न करके व यथास्थिति बनाए रखने पर

जोर देता है। उसका तर्क है कि जाति के बंधन ढीले होंगे तो अधर्म फैल जाएगा। यह ऐसा तर्क है जो किसी भी आस्थावान हिंदू को विचलित कर देगा। जाति की मर्यादा बनी हुई है तो धर्म सुरक्षित है, यह मर्यादा टूटेगी तो धर्म क्षतिग्रस्त हो जाएगा–यह सवर्णों द्वारा प्रचारित बहुत पुराना तर्क है। इस तर्क को स्वीकार करने वाले सिर्फ सवर्ण ही नहीं हैं। पिछड़े वर्ग के, शूद्र जातियों के लोग भी यही मानते रहे हैं। प्रेमचंद की एक कहानी ^सद्गति* का साक्ष्य देकर कहा जाए तो पाप-पुण्य धर्म-अधर्म का निर्णय जाति-व्यवहार ही किया करता है। ^आवाजें* में ठाकुर औतार सिंह मेहतरों को काम पर वापस बुलाने के लिए अपने एक कारिन्दे को भेजता है। कारिन्दा मेहतर टोले के एक वृद्ध व्यक्ति इतवारी द्वारा टका सा जवाब पाकर वापस लौटता है। वह भी जाति के टूटन को अधर्म-प्रसार के रूप में देखता है और इसके लिए शहरी जीवन पद्धति को जिम्मेदार ठहराता है, ßबड़े ठाकुर सुना है, शहरों में तो होटलों में लोग एक ही कप में चाय-दूध पीवै हैं। सुना है वहां के मंदिर में भी घुस जाते हैं ससुरे... ÞI इस उद्धरण से स्प-ट है कि गांव में जाति की जड़ता इस कदर मौजूद है कि जिनके स्वार्थ सध रहे हैं उन द्विजों के साथ, भुक्तभोगी भी उसके पक्ष में खड़े हैं।

दलित चेतना के प्रसार के संबंध में गांव और शहर के आपसी रिश्तों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। प्राप्त अवसरों का लाभ उठाकर दलित समुदाय के जो लोग गांव छोड़कर शहर में जा बसे उनमें से कुछ ने आवाजाही का संबंध बनाए रखा। इसमें भी मुख्यतः दो वर्ग थे। गांव से संबंध रखने वाले कुछ ऐसे थे जो अब गांव के प्रति हिकारत का भाव रखते थे। कुछ ऐसे भी थे जो ग्रामीण दलितों की दशा से क्षुब्ध थे, परिस्थितियों को समझते थे और अपने समुदाय को दो-ा देने, कोसने की बजाए उनमें नई रोशनी, नया जज्बा पैदा करने का प्रयास करते थे। ^आवाजें* में मेहतर समुदाय के जिस इतवारी के यहाँ से बदलाव की आवाज उभरी है उसका श्रेय इतवारी के उस लड़के को दिया गया है जो शहर से गांव पहुंचा है, ßरोज-रोज इतवारी के घर पर ही पंचायत होती है। उसका लड़का शहर से आया है। उसी का काम हो सकता है।Þ एक कहावत है कि सौ बुझे हुए दीपक मिलकर एक दीपक को नहीं जला सकते जबकि एक जला हुआ दीपक सौ बुझे हुए दीपकों को जला देता है। इतवारी का लड़का यही दायित्व निभा रहा है। ठाकुरों को इस अप्रत्याशित परिघटना पर अचरज होता है। वे समझ नहीं पाते कि जो मेहतर आज तक उनके सामने मुंह भी नहीं खोलते थे वे काम पर आने से मना कैसे कर सकते हैं। दास को अपनी दासता का एहसास विद्रोह की पहली सीढ़ी है। मेहतरों के साथ यही हुआ। उन्हें उनके ही परिवार के किसी सदस्य ने एहसास करा दिया। इस एहसास की जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। एक उदाहरण देखें। इतवारी को काम पर बुलाने ठाकुर का कारिन्दा आया हुआ है। आपस में बातचीत चल रही हैः

^^इतवारी तुझे ठाकुर ने बुलाया है....Þ

कारिन्दे के पहली बार कहने को इतवारी ने अनसुना कर दिया था। तब दोबारा कारिन्दे ने उसी लहजे में कहा तो वह उबल सा पड़ा–

^^कौन ठाकुर....?Þ

^^गांव में कौन ठाकुर है तुझे पता नहीं.....?Þ

कारिन्दा क्षण भर में ही भड़क उठता है।

^^नहीं , हमें कुछ पता नहीं। अब कोई किसी की ठकुराहट नहीं चलती है, सब अपने-अपने घर में आजाद हैं।Þ

^^क्या...?Þ

ßकारिन्दा अब पूर्ण रूप से गर्मा गया था। उसे सपने में भी विश्वास न था कि इतवारी, जिसकी उम्र मैला ढोते-ढोते तथा दूसरों की जूठन खाते-खाते बीत गई वह ऐसा भी कह सकता है।Þ

हिन्दू समाज व्यवस्था को आत्मसात किए व्यक्ति के लिए यह बात सचमुच समझ में न आने वाली है। जिस व्यवस्था में श्रे-ठता और हीनता की घुट्टी बचपन से ही पिलाई जाती है, अनगिनत आप्त वाक्यों के जरिए दब्बू बनने या दंभी होने की प्रक्रिया संपन्न की जाती है और व्यक्ति को स्वतंत्र होने को अवकाश न देकर पहले से तय सांचों में ढाल दिया जाता है उसमें ऐसी अभिव्यक्ति विस्फोटक का ही दर्जा रखेगी। इतवारी को क्योंकि अपनी स्थिति का ज्ञान और उस स्थिति से असंतो-ा हो चुका है इसलिए वह ऐसी दो टूक बात कह पाता हैः ßहूँ, कह देना अब कोई नइ जावैगा। भौत दिन हो गए गुलामगिरी करते-करते।Þ इतवारी का यह वाक्य नई समाज रचना की अनिवार्य शर्त है। तमाम जोखिम उठाकर ही ऐसा वाक्य बोला जा सकता है। एक तरफ तो सामाजिक पदानुक्रम में सबसे नीचे, दूसरे, बेहद कमजोर आर्थिक हालत-ऐसे में दृढ़ संकल्प के बिना इतवारी नकार की भा-ाा का व्यवहार कर ही नहीं सकता था। नकार की यह भा-ाा संस्कारों की मजबूत, अभेद्य चहारदीवारी को तोड़कर ही निर्मित हो रही है। कहानीकार सामाजिक रूपांतरण की इस प्रक्रिया को बड़ी बारीकी से देखता है और उसका चित्रण करता है। वह दर्शाता है कि हमारी मानसिक बुनावट में ही वे तंतु उलझा दिए गए है कि हम तथाकथित सामाजिक मर्यादाओं के परे कुछ सोच ही न पाएं। ßब्राह्मण का लड़का चाहे वह नाक साफ करना भी न सीख पाया हो, लेकिन साठ साल के बूढ़े तक उसे ßपंडितजी पालागनÞ कहकर आदर प्रकट करते हैं।Þ ऐसे जड़ीभूत सामाजिक परिवेश में परिवर्तन का चक्र बहुत मंद-मंथर गति से ही घूमेगा। कहानीकार दिखाता है कि गांव के सवर्ण इस बात पर अड़े हुए हैं कि वे लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को गांव में प्रवेश ही न करने देंगे। ठाकुर औतार सिंह का उद्घो-ा है, ßशहर की बात दूसरी है पर हमारे गांव में यह सब न चलेगा।Þ

जिस गांव मकदूमपुर पर यह कहानी (^आवाजें*) आधारित है वह आजाद भारत के पचास व-र् देख चुके तमाम भारतीय गांवों में से एक है। मकदूमपुर उस श्रेणी का प्रतिनिधि गांव है जहां अब परिवर्तन की लहर पहुंची है। पूरी व्यवस्था अत्यंत अस्थिर है या ऊपर से दिखाई पड़ती है। संक्रमण का जो दौर शुरू हुआ है उसमें यह कहना मुश्किल लगता है कि भवि-य किन शक्तियों का होगा। उनका, जो शो-ाणविहीन समतामूलक समाज लाना चाहते हैं या उनका जो भेदभाव वाली ब्राह्मण व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं? युग की हवा, समय का झुकाव स्प-ट रूप से लोकतांत्रिक शक्तियों का है लेकिन वर्चस्ववादी ताकतें भी कमतर नहीं हैं। उनकी सामर्थ्य का ठीक-ठीक अंदाज लगाना मुश्किल है। वे किन रूपों में, कितने तरीकों से, किन तरकीबों से समय को अपने अनुरूप कर लें कहा नहीं जा सकता। ठाकुर औतार सिंह अपनी जातीय सामर्थ्य के बूते ही यह कहता है, ßअरे कल ही देखना, इन ससुरों को छठी का दूध न पिला दिया तो किसी ठाकुर का जना नहीं भंगी का जना कह देना। सारी हेकड़ी भुला दूंगा, ससुरों का दिमाग सब ठीक हो जाएगा।Þ

9.5 पुलिस प्रशासन का जातिवादी रवैया

लंबे स्वाधीनता संघ-र् के बाद भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्ति मिली। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अर्जित मूल्यों के मुताबिक भारत में जनतांत्रिक शासन पद्धति को स्वीकारा गया लेकिन, लोकतंत्र के बुनियादी उसूल सार्वजनिक जीवन के दैनंदिन व्यवहार का हिस्सा नहीं बने। इस तरह भारतीय समाज में एक फांक पड़ गई। जिस लोकतंत्र को राजनीतिक व्यवस्था के रूप में अपनाया गया था उसके अनुसार रा-ट्र के सभी लोग समान है और किसी के साथ किसी रूप में भेदभाव नहीं बरता जा सकता। वर्ण और जाति में बंटे हमारे

समाज के लिए यह वास्तव में ऐतिहासिक अवसर था। अपने को बदलने और न्यायपूर्ण व्यवस्था की तरफ अग्रसर होने की बजाए हमारा समाज उन्हीं परंपराओं से चिपका रहा जिसे नकारकर नई शासन/समाज व्यवस्था की नींव रखी गई थी। जातिवादी मानसिकता को मजबूत बनाए रखने में ही तथाकथित उच्चवर्णों को सुरक्षा दिखी। उन्होंने एक तरफ लोकतंत्र का पाखंड रचा दूसरी तरफ वर्णवादी, जातिवादी व्यवहार में कोई कमी नहीं की। संवैधानिक मूल्यों के दबाव के चलते राजनीतिक पार्टियों ने समतामूलक समाज व्यवस्था की रचना के लिए नियम-कानून बनाए लेकिन निहित स्वार्थवश उन नियमों, कानूनों का सही कार्यान्वयन नहीं किया। आजाद भारत में ऐसे आंदोलन रा-ट्रीय स्तर पर नहीं चलाए गए जिससे धर्म निरपेक्ष और लोकतांत्रिक मूल्य सामाजिक आचरण की आधारशिला बन सकें। नतीजतन, वहीं पारंपरिक संरचनाएं बनी रहीं जो घणा और असमानता पर टिकी हुई थीं।

एक लोकतांत्रिक देश से यह न्यूनतम अपेक्षा होती है कि वह लोकतंत्र के उसूलों के खिलाफ सक्रिय ताकतों पर रोक लगाएगा और समाज में न्याय संगत अमन चैन कायम रखेगा। भारत की राजनीतिक व्यवस्था से यह उम्मीद की जानी स्वाभाविक थी कि उसका प्रशासन, उसकी पुलिस व्यवस्था धर्म, जाति, संप्रदाय, क्षेत्र आदि संकीर्णताओं से ऊपर उठकर काम करेगी। यह अफसोसजनक है कि उम्मीद पूरी नहीं हुई। ऐसे तमाम उदाहरण दिए जा सकते हैं जिसमें पुलिस और सरकारी मशीनरी ने दलित जातियों का दमन करने वालों के खिलाफ कार्यवाही करने की बजाए उनके पक्ष में काम किया। असल में, सामान्य प्रशासन और पुलिस व्यवस्था में ऊपर से नीचे तक वे ही लोग हावी रहे जिन्हें सवर्ण कहा जाता है। इन्होंने अपनी जातिवादी मानसिकता त्यागी नहीं। ज्यादातर मामलों में इन्होंने जातिवादी पूर्वाग्रहों को लागू किया। कहने की ज़रूरत नहीं कि अगर दलित सवर्णों के अत्याचारों का शिकार होंगे तो सुरक्षा और न्याय के लिए सबसे पहले पुलिस के पास जाएंगे। जनतांत्रिक शासन प्रणाली में पुलिस का ढांचा इसीलिए खड़ा किया गया है कि दलित और कमजोर तबकों के लोग अपने को सुरक्षित, भयमुक्त महसूस करें। भारतीय पुलिस ने अपना दायित्व भली-भांति नहीं निभाया और वह कई बार दमनकारी ताकतों के साथ, उनके पक्ष में दिखाई पड़ी। दलित साहित्य में पुलिसिया अत्याचार की, उसके जातिवादी व्यवहार की तमाम घटनाएं दर्ज हैं। 'आवाजें* कहानी साफ तौर पर दर्शाती है कि मकदूमपुर गांव के ठाकुरों की दबंगई पुलिस प्रशासन की शह से पो-ित हो रही थी। जब ठाकुर औतार सिंह गांव के दलितों को सबक सिखाने का संकल्प करता है तो उसके जेहन में उसी की जाति का रामवीर है जो वहां के थाने में सीनियर इंस्पेक्टर है। अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर ठाकुर औतार सिंह को यकीन है कि इंस्पेक्टर रामवीर वही करेगा जिससे ठाकुरों की दबंगई बनी रहे। योजना के अनुसार ही इंस्पेक्टर मेहतरों को ßसबकÞ सिखाता हैः ßदो चार दिन लगातार धर-पकड़ हुई। मेहतरों की बस्ती से बीस-तीस को डकैती के केस में पुलिस ने बंद कर दिया। दो-चार लोगों के पास से हथियार भी बरामद कर दिए। एक दो जगह मुठभेड़ भी दर्ज हो गई, भला बिना मुठभेड़ के डकैतों को पकड़ा कैसे जा सकता था?Þ हम अखबारों में आए दिन पुलिस के इस जातिवादी, दलित विरोधी रूप के दर्शन पाते हैं। पुलिस का यह रूप हमारे आधे-अधूरे लोकतंत्र को और भी विद्रूप बनाता है। ऐसी पुलिस व्यवस्था सुरक्षा का आश्वासन देने के बदले दहशत पैदा करती है। बताने की आवश्यकता नहीं कि हमारे समाज में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया का अनिवार्य सोपान पुलिस व्यवस्था के वर्तमान चरित्र के आमूल बदलाव का होगा।

9.6 दलित राजनीति के उभार के सकारात्मक परिणाम

यह जानी हुई बात है कि आज़ादी के बाद दलितों पर होने वाले अत्याचारों में अपेक्षित कमी नहीं आई है। इस स्थिति के कई कारणों में से एक कारण यह है कि दलित

अपने को राजनीतिक रूप से संगठित नहीं कर सके और राजनीतिक पार्टियों के घटाटोप में अपने कोई उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज नहीं करा सके। सवर्ण वर्चस्व वाली राजनीतिक पार्टियां अपने चुनाव घो-णा पत्रों में जो लिखती रहीं उसका उलटा करती रहीं। चुनाव जीतने के लिए उन्हें दलितों के वोटों की ज़रूरत थी इसलिए उन्होंने समय-समय पर दलितों को सब्जबाग दिखाए और प्रायः भरमाकर अपना हित साधा। लेकिन, धीरे-धीरे दलित समुदाय के जागरूक लोगों ने लोकतंत्र में राजनीतिक संगठन की अहमियत समझी और राजनीतिक रूप से गोलबंद हुए। राजनीति में दलितजनों की सक्रियता के कई शुभ संकेत नज़र आए। सामान्य प्रशासन और पुलिस व्यवस्था में यह संदेश गया कि अब वे निर्द्वन्द्व भाव से दलित उत्पीड़न का अपना पुराना उपक्रम चालू नहीं रख सकते। दलितों के राजनीतिक उभार ने शासन को बाध्य किया कि वह संविधान के अनुकूल आचरण करते हुए सरकारी नौकरियों में दलित तबके को समुचित जगह दे। शासन-सत्ता में दलित समाज के व्यक्तियों की उपस्थिति सकारात्मक रही है। दलितों की राजनीतिक सक्रियता ने पुलिस की दमनकारी गतिविधियों पर रोक लगाने में उल्लेखनीय सफलता हासिल की है। मकदूमपुर के मेहतर जब फर्जी डकैती में फंसा दिए जाते हैं तो दलित नेताओं के दबाव से दो-ी पुलिस पर कार्यवाही होती है, इंस्पेक्टर रामवीर लाइन हाजिर कर दिया जाता है और अखबार इस घटना को प्रमुखता से प्रकाशित करते हैं। मकदूमपुर के सभी दलित रिहा हो जाते हैं। नौकरशाही का रूख राजनीति से तय होता है और राजनीति में दलितों की अनुपस्थिति से जो कुछ सामान्य ढंग से चल रहा था वह दलितों की अपनी राजनीतिक ताकत के रेखांकन के बाद बदलता है। नौकरशाही का रवैया दलित विरोधी नहीं रहने पाता।

9.7 सामाजिक रूपांतरण की कठिनाइयां और उम्मीद की रोशनी

क्या सवर्ण तबका व्यापक मनु-यता के हित में अपनी तथाकथित उच्चता का हठ कभी त्यागेगा? क्या दलितों पर पुलिसिया अत्याचार का सिलसिला कभी थमेगा? क्या हम कभी न्यायपूर्ण, समरस समाज की दिशा में आगे बढ़ेंगे? क्या भारत के सभी नागरिकों को संविधान प्रदत्त बुनियादी अधिकार सचमुच प्राप्त हो सकेंगे? क्या भारतीय राज्य दलितों को पारंपरिक घृणित पेशों से सम्पूर्णतः मुक्ति दिलाने में निर्णायक कदम उठाएगा? संक्षेप में, क्या भारतीय समाज की वर्णवादी, जातिवादी संरचना ढहेगी और उसकी जगह न्यायपूर्ण, शो-ण विहीन, समतामूलक समाज का उदय होगा? ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर गंभीरतापूर्वक सोचने विचारने की जरूरत है। इतने लंबे समय से जिस मानसिकता ने राज किया है, जिस तरह का जड़तापूर्ण मानस निर्मित हो गया है उसके ध्वस्त होने में तमाम अड़चनें, कई मुश्किलें हैं। मकदूमपुर गांव के मेहतर उस पेशे को छोड़ना चाहते हैं जिसके कारण उनका जीवन लांछित है। देश भर में चल रही परिवर्तन की लहर से वे थोड़े अवगत होते हैं और उसके प्रभाव में अपने पर थोपे गए सफाई के काम को नकारने का सामूहिक निर्णय लेते हैं। इस निर्णय से भूचाल-सा आ जाता है और गांव के ठाकुर मेहतरों को सबक सिखाने की ठान लेते हैं। स्थानीय पुलिस व्यवस्था उनकी मुट्ठी में है और इंस्पेक्टर ठाकुर रामवीर सिंह गांव के सभी मेहतरों को डकैती के झूठे केस में फंसाकर गिरफ्तार कर लेता है। लेकिन, दलित नेताओं की सक्रियता, एक नामी वकील की कोशिश तथा अखबारों में छपी खबरों के परिणामस्वरूप गिरफ्तार हुए सभी मेहतर एक सप्ताह में छूट गए। पुलिस और कानून व्यवस्था से इतनी जल्दी छूटना अप्रत्याशित रूप से सुखद घटना है। मकदूमपुर के मेहतर अपनी आर्थिक हैसियत के अनुसार जश्न मनाते हैं। खुशनुमा रात में मेहतरानियां नाचती-गाती हैं और पुरु-न कच्ची शराब और सुअर के मांस खा-पीकर

मस्त हो जाते हैं। मुहल्ले में क्रमशः सन्नाटा पसर जाता है। उधर ठाकुर बाड़े में अशान्ति फैली हुई है। मेहतरों का जेल से छूट जाना और इस खुशी को समारोहपूर्वक मनाना उनके लिए नाकाबिलेबर्दाश्त है। ठाकुर औतार सिंह बड़ा क्रूर प्रतिशोध लेता है, ßआधी रात का समय रहा होगा। मेहतरों के टोले में आग की लपटें देखी गई, जो लपलपाती हुई ऊँची होने लगी थी। शराब में धुत्त किसी को होश न था। जब होश आया तो वे सब कुछ गंवा चुके थे। किसी के चार सुअर थे तो चारों ही झुलस गए थे। बच्चों तक को आग ने माफ न किया था। ...... बस्ती में कोई घर ऐसा न था जिसमें कोई मरा न हो। बस्ती जैसे किसी आग की घाटी में बदल गई थी।Þ ठाकुर औतार सिंह जिस समुदाय के प्रतिनिधि हैं उसका यह बड़ा वीभत्स रूप है। अगर यह समुदाय इतना ही असहि-णु, क्रूर और अमानवीय है तो बराबरी पर आधारित समाज कैसे बन सकता है। साधनहीन दलित न्यायसंगत मांग क्योंकर उठा सकते हैं? जनतांत्रिक व्यवस्था का ढोंग किसलिए रचा जा रहा है?

इन सबके बावजूद क्या बेहतर भवि-य की उम्मीद की जा सकती है? मोहनदास नैमिशराय निराश नहीं हैं। ^आवाजें* कहानी के दलित पात्र सवर्ण उत्पीड़न से आतंकित होकर, थकहार कर बैठ नहीं जाते। उनकी चेतना को पुख्ता आधार मिल चुका लगता है। आगजनी के बाद फैली खामोशी स्थायी नहीं होने पाती। ठाकुर औतारसिंह जैसे लोग अपनी साजिश में कामयाब नहीं हो सकते। उन्होंने पुरानी पीढ़ी को कुचला था लेकिन नई पीढ़ी फौलादी इरादों के साथ उठ खड़ी हुई है। अत्याचारी व्यवस्था का अंत सन्निकट लगता है ßफिर सन्नाटे को चीरती हुई कुछ आवाजें सुनाई दीं। सब लोग चौंककर उन आवाजों को सुनने लगे। रात के दूसरे पहर में जहां लोग गीली आंखे लिए आकाश की ओर निहार रहे थे, वही नई पौध की आंखों में परिवर्तन के लिए अटूट विश्वास था। कल तक जो बच्चे जूठन पर लड़ते-झगड़ते थे उनके मन में कुछ कर गुजरने की चेतना जन्म ले चुकी थी।Þ

9.8 सारांश

ßआवाजेंÞ दलित चेतना की प्रतिनिधि आवाज है। यह भारतीय समाज में दलितों की स्थिति का चित्रण करती है और उनकी दुर्दशा के कारणों को भी रेखांकित करती है। क्योंकि कहानीकार मोहनदास नैमिशराय मूलतः पत्रकार हैं इसलिए उन्हें अपने वक्त की धड़कन का पता है। अपनी दीगर कहानियों, उपन्यासों, आत्मकथा के दोनों खंडों में उन्होंने दलित प्रश्न को कई कोणों से उभारा है। उनकी रचनाओं से गुजरने के क्रम में संवेदनशील पाठक तमाम त्रासद स्थितियों का नए ढंग से साक्षात्कार करता है और उस आकुलता से तादात्म्यीकत होता है जो रचनाकार के भीतर समाई हुई है। नैमिशराय की दलित चेतना डॉ. आंबेडकर और फुले की विचारधारा से प्रेरित-प्रभावित है। वे बार-बार दलित समुदाय को अपनी रचनाओं के माध्यम से जागरूक करने, संघर्-ाशील बनाने का प्रयास करते हैं। ^आवाजें* कहानी का प्लॉट इस प्रयास को ही आगे बढ़ाता है। यह कहानी आधुनिक-बोध के शुभ प्रभावों को अपने ढंग से रेखांकित करती है और भारतीय समाज में लोकतंत्र के बनियादी मूल्यों के अभाव को महसूस कराती है। जातीय दंभ में आकंठ डूबे मकदूमपुर गांव के ठाकुर पुरजोर कोशिश करते हैं कि गांव के मेहतर अपने पुश्तैनी पेशे से विलग न हों। उन्हें यह असह्य लगता है कि दलित स्वाभिमान से, अपनी इच्छानुसार जीने की बात करने लगे हैं। पहले तो वे मेहतर टोले को डराते-धमकाते हैं, बाद मे गिरफ्तार करा देते हैं। अपने कुचक्रों में नाकामयाब रहने पर आखिरकार वे मेहतरों की बस्ती को जला डालते हैं। उन्हें तब भी सफल नहीं होना है क्योंकि दलित अब मुक्तिकामी चेतना से लैस हो चुके हैं। अहिंसा, बराबरी और भाईचारा शब्द पर आधारित समाज की रचना का स्वप्न अब साकार होना है।

इकाई 10 आमने-सामने %fofiu fcgkjh

bdkbZ dh :ijs[kk

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 कहानी की यात्रा में दलित हस्तक्षेप

10.3 विपिन बिहारी का जीवन वृत्त एवं कृतित्व

10.4 आमने-सामने : सवर्ण अवसरवाद बनाम दलित दृ-िट

10.5 आमने-सामने : कथावस्तु

10.6 आमने-सामने : भारतीय गाँव तथा सवर्ण एवं दलित समाज

10.7 सवर्ण अवसरवाद, धर्मसत्ता और दलित

10.8 दमन और उत्पीड़न की परंपरा में प्रतिशोध का हस्तक्षेप

10.9 दलित उत्पीड़न का संदर्भ और स्वानुभूति एवं सहानुभूति का प्रश्न

10.10 आमने-सामने : अस्मिता की खोज और भवि-य दृ-िट का प्रश्न

10.11 आमने-सामने और दलित कहानी का सौन्दर्यशास्त्र

10.12 सारांश

10.0 उद्देश्य

एम.एच.डी. 19, खंड 3 की इकाई 13 के अन्तर्गत् आप विपिन बिहारी की बहुचर्चित लंबी कहानी आमने-सामने का अध्ययन करेंगे। दलित अस्मिता की अभिव्यक्ति समकालीन कहानी की केन्द्रीय चेतना है। कथा में कथा में आनंद या सौन्दर्य को ही कसौटी मानने की पारंपरिक दृ-िट के स्थान पर दलित कहानी का लक्ष्य है दलित समाज को गुलामी से परिचित कराना, गुलामी या दासता के खिलाफ़ संघ-र् करने के लिए प्रेरित करना और इन सबसे बेख़बर समाज के समक्ष अपनी व्यथा, बदलाव की आकांक्षा और संघ-र्ों का बयान करना। दलित कहानी संसार का यह मानना है कि उनकी उपस्थिति को समाजशास्त्रीय प्रसंगों के संदर्भ में ही देखना चाहिए यही कारण है कि दलित कहानी ऐसे सौन्दर्यशास्त्र के प्रति अपनी पक्षधरता प्रकट करती है, जिसकी केन्द्रीय चेतना जीवनवादी एवं यथार्थवादी हो। हम इन संदर्भों के साथ कुछ विशि-ट मुद्दों के आलोक में /आमने-सामने* कहानी का अध्ययन करेंगे। कहानी के सूक्ष्म विन्यास के दौरान हम पाते हैं कि कहानीकार ने वैयक्तिक स्पर्श से अनेक प्रसंगों को कथा सूत्रों में पिरोया है। कहानी केवल उत्पीड़न की दास्तान नहीं सुनाती, वह बेहद कलात्मक ढंग से सवर्ण अवसरवादी चरित्र को भी बेनकाब करती है। वह स्वानुभूति और सहानुभूति के सवालों को दलित संदर्भ में देखने का प्रयास भी करती है। इस कहानी के अध्ययन के बाद आप परिचित होंगे।

भारतीय समाज में उपस्थित दलित उत्पीड़न से;

धर्मसत्ता समर्थित सवर्ण श्रे-ठता की वास्तविकता से;

आमने-सामने की कथावस्तु से;

सवर्ण अवसरवाद के उस चरित्र से जो अंततः यथास्थितिवादी सामाजिक संरचना के पक्ष में सक्रिय होता है;

दलित उत्पीड़न की परंपरा में प्रतिशोध की उठती उन आवाजों से जिन्हें अब उपेक्षित करना संभव नहीं;

दलित नेतृत्व की उभरती छवि से;

दलित उत्पीड़न के संदर्भ में स्वानुभूति और सहानुभूति की वास्तविकता से;

आमने-सामने कहानी के माध्यम से दलित सौन्दर्यशास्त्र से; और

दलित उभार में उपस्थित अस्मिता की खोज और भवि-य दृ-टि के संदर्भों से।

आइए, इकाई का विस्तृत अध्ययन करें।

10.1 प्रस्तावना

नब्बे के दशक में दलित कहानियों ने अपने सशक्त हस्तक्षेप से नए आस्वाद और नये कला मूल्यों के विमर्श की पीठिका पेश की। कहना न होगा यह कहानी संसार प्रचलित कथा संसार से एकदम अलग था। इन कहानियों में भारत की उस दलित आबादी के यथार्थ का चित्रण किया गया, जिन्हें मनुवादी व्यवस्था ने अस्पृश्य करार दिया था और जिनकी छाया मात्र से द्विज अपवित्र हो जाते थे। दलितों को सभ्यता की समस्त उपलब्धियों से वंचित करने के लिए केवल एक ही काम की गुंजाइश छोड़ी गयी द्विजों की सेवा। ^दलित* शब्द अस्पृश्य के समानार्थी के रूप में सबसे पहले 16 नवंबर 1928 के ^बहिष्कृत भारत* में प्रयोग किया गया। यह प्रयोग आधुनिक भारत के क्रांतिकारी विचारक डॉ. भीमराव आंबेडकर द्वारा ^प्रासंगिक विचार* कॉलम के अंतर्गत किया गया। धीरे-धीरे यह शब्द भारत की बहुसंख्यक आबादी की चेतना का वाहक बना जिसने पारंपरिक सवर्ण सत्ता केन्द्रों से अपनी असहमति जतायी। दलित अस्मिता की तलाश ने उन्हें ऐसे सौन्दर्यशास्त्र और ऐसे सौन्दर्यबोध के लिए प्रेरित किया, जिसमें उनकी पीड़ा, संघ-र्, सपने और सरोकारों की अभिव्यक्ति के लिए अवसर हो। दलित चेतना संपन्न साहित्य ने ^पूज्य अवधारणाओं* से बहस की। ^पवित्र संस्कारों* की क्रूरताओं एवं ^पावन परंपराओं* की असलियत को बेनकाब किया।

आरंभिक दलित कहानियों में उत्पीड़न और विद्रोह के स्वरों को प्रमुखता दी गयी। धीरे-धीरे संवेदना की परिधि का विस्तार हुआ। उत्पीड़न, विद्रोह के साथ सवर्ण अवसरवाद, दलित नेतृत्व, दलित स्त्री चेतना समेत अन्य वि-ाय भी संवेदनात्मक परिधि के भीतर आए। इस दृ-टि से विपिन बिहारी की कहानी ^आमने-सामने* उल्लेखनीय हैं। कहानी केवल उत्पीड़न और विद्रोह के संदर्भों को ही नहीं समेटती, वह सवर्ण अवसरवाद और दलित नेतृत्व के मुद्दे को भी बेबाकी से उठाती है। कहानी में शुरू से अंत तक पाठक का सहयात्री बनाने की विलक्षणता है। पूरी कहानी एक ऐसे ब्राह्मण के इर्द-गिर्द घूमी है, जिसका पिता कर्मकांड सनातनी और सवर्ण वर्चस्व का कट्टर पो-ाक और समर्थक है। कहानी के आरम्भ में ऐसा आभास होता है कि बेटे पर पिता के विचारों की कठोर प्रतिक्रिया हुयी और बेटा समरसतावादी समाज का पो-ाक ही नहीं ब्राह्मणवाद का तीव्र विरोधी और दलित विचारधारा का समर्थक बन गया। वह पत्नी और पिता से ही नहीं समाज पंचों से भी अपने विचारों के लिए जिस तरह बहस करता है उससे ऐसा प्रतीत होना स्वाभाविक है। पर धीरे-धीरे उसकी वास्तविकता पाठकों के समक्ष प्रकट होती है। वह दरअसल बदलते समय में अपने खालिस अवसरवादी चरित्र द्वारा नेतृत्व को हड़पने की लालसा रखता है। कथाकार विपिन बिहारी ने इसे बेहद खूबसूरती से कथा-विन्यास में पिरोया है। आप कथा के सहयात्री के रूप में एक नए तरह के साहित्यिक आस्वाद से रू-ब-रू होंगे।

10.2 कहानी की यात्रा में दलित हस्तक्षेप

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा में नब्बे के दशक में दलित कहानी ने दस्तक दी। दलित कहानियों ने जिन, सवालों को उठाया, वे हिन्दी कहानी में पहले नहीं थे। सदियों से गुलामी की अंतहीन नृशंसताओं को ढोते दलित समाज ने अभिव्यक्ति के जिन रूपों का प्रयोग किया, वह पारंपरिक सौन्दर्य बोध में बेमिसाल दखल थी। आक्रोश और यातना की वह जबान जो दलित चेतना की वाहक बनी, उस पर खूब आपत्तियाँ की गयीं, पर आलोचक यह भूल गये कि दलित कहानी का केन्द्रीय सरोकार आनंद या सौन्दर्य नहीं, बगावत है। दलित साहित्य के विश्ले-क कंवल भारती इस संदर्भ में मौंजू टिप्पणी करते हैं, ßदलित कहानी की आलोचना** में अक्सर उसकी भा-ा पर आपत्ति की जाती है। कुछ आलोचकों ने तो दलित साहित्य को ^गाली साहित्य* की भी उपमा दे डाली है। यहाँ में यह स्प-ट करना चाहूँगा कि बलात्कार की शिकार कोई भी स्त्री श्रृंगार की मोहक भा-ा नहीं बोलेगी, गुलामी का जुआ ढो रहे व्यक्ति और अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति की भा-ा साहित्यिक नहीं होगी; वह बगावत की भा-ा बोलेगा। शिक्षा और सम्मानित ज़िन्दगी से दलित सदियों से वंचित रहे हैं, उन्हें सभ्य भा-ा में बोलने तक का नि-ेध था। दलित कहानी उसी यथार्थ से उपजी हैं। इसलिए उसके पात्र वही भा-ा बोल सकते हैं, जो समाज ने उन्हें सिखायी हैं। मधुर साहित्यिक भा-ा में कल्पना से सुन्दर चित्र तो खींचे जा सकते हैं, पर यथार्थ को अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

जाहिर सी बात है, दलित हस्तक्षेप ने पारंपरिक कहानी के सौन्दर्यशास्त्र से अपनी अलग ज़मीन का विकास किया। दलित कहानियों ने व्यवस्था के विरुद्ध सामाजिक परिवर्तन या सामाजिक समता को अपना सरोकार बनाया। दर्शन के स्तर पर वह डॉ. भीमराव आंबेडकर की सामाजिक क्रान्ति की पक्षधर हैं, जिसका उद्देश्य है समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के मूल्यों का निर्माण करना और रूढ़ियों से ग्रसित व्यवस्था को बदलना इस धारा के अनेक समर्थ रचनाकारों जैसे ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, भगीरथ मेघवाल, विपिन बिहारी, रत्नकुमार सांभरिया, जयप्रकाश कर्दम, कुसुम मेघवाल, सुशीला टाकभौरे ने दलित संसार को नये आयामों और विद्रोही तेवरों से संपन्न किय। कथा यात्रा की इस परंपरा में कथाकारों ने अपनी कहानियों को वैयक्तिक स्पर्श प्रदान कर निजी विशि-टताओं की परखना विचारोत्तेजक अनुभव है।

10.3 विपिन बिहारी का जीवन वृत्त एवं कृतित्व

कथाकार विपिन बिहारी दलित कथा यात्रा के बेहद महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनका जन्म बिहार के गया में 2 जनवरी 1965 को हुआ। राजनीति विज्ञान में बी.ए. ऑनर्स की शिक्षा प्राप्त की। उनके द्वारा रचित कहानी संग्रह हैं – ^अपना मकान* ^पुनर्वास*, ^आधे पर अंत*, ^राजमार्ग पर गोलीकाण्ड*, ^चील*। इसके अतिरिक्त उनकी अनेक कहानियाँ ^एक और आसमान*] ^दूसरी दुनिया का यथार्थ*] ^नारी मन की कहानियाँ*] ^झारखंड की श्रे-ठ कहानियां* तथा ^हाशिए* से बाहर कहानी संग्रहों में संकलित हैं। लघुकथा संग्रह ^कल और आज* एवं व्यंग्य संग्रह ^सवारी सरकार बहादुर की* भी प्रकाशित। उपन्यास ^दरारें* प्रकाशनाधीन है। उनके काव्य संग्रह ^कविता नहीं कुरुक्षेत्र* ^अनुभूति से अभिव्यक्ति तक* ^संभावनाएं हैं शे-ा बहुत*, ^लहरें* ^अक्षितिज* तथा ^शाम और सहर* भी खूब चर्चित रहीं। फ़िलहाल पूर्व रेलवे जपला, झारखंड में लिपिक पद पर कार्यरत हैं।

10.4 आमने-सामने : सवर्ण अवसरवाद बनाम दलित दृ-िट

आमने-सामने कहानी प्रचलित दलित कहानी से इस अर्थ में अलग है कि उसमें दमन उत्पीड़न और विद्रोह ही नहीं, उस सवर्ण चरित्र की असलियत का भी बयान किया गया है, जब कई बार विद्रोही मुद्राओं के साथ दलित प्रतिरोध का हमसफर बनने के भ्रम को रचता हैं। कहानी में भवि-योन्मुख दलित दृ-िट इस सवर्ण अवसरवादी चरित्र को आसानी से पहचान लेती है। दलितों में भी दो वर्ग है, पहला वह जो पुरानी पीढ़ी है और जिसमें कहीं न कहीं परंपरागत सवर्ण श्रे-ठता या तथाकथित पवित्रता के आतंक की जड़ें गहरी गड़ी हुयी हैं। और दूसरा वह जो भवि-योन्मुख दलित दृ-िट से प्रेरित संचालित नयी पीढ़ी है जिसमें तार्किकता और विद्रोह के कारण सवर्ण चरित्र की असलियत को बेनकाब करने की कोशिश है। कहानी के आंरभ में श्रीमुख मिश्रा जिन क्रान्तिकारी और रूढ़िभंजक तेवरों के साथ उपस्थित होता है उससे एकबारगी यह गलतफ़हमी पैदा होती है कि वह सुधारवादी आदर्शों के स्थान पर परिवर्तनकामी विचारों का कायल हैं, चाहे इसके लिए जितनी भी जोखिम उठानी पड़े, वह प्रस्तुत हैं। पत्नी सूरजमुखी और रूढ़िवादी पवित्रबोध के कायल पिता देवकी मिश्रा और शरीफ़ा मोची से हुयी विभिन्न बहसों के आलोक में इसे बखूबी समझा जा सकता है। कुछ प्रसंगों का यहां जिक्र किया जा सकता है।

पत्नी सूरजमुखी श्रीमुख मिश्रा के दलित बस्ती में उठने-बैठने पर रोज़ झगड़ती। वह कहती ßदुसाधों - चमारों के संग रोज़ उठते-बैठते हों, तुम्हारा जूठा बर्तन न धोऊंगी। क्या मिल जाता है वहाँ, अपनी बिरादरी के नहीं हैं क्या? हमसे ज्यादा दिमगर हैं वे? कल को ऐसा होगा कि बिरादरी के लोग नाराज होकर बिरादरी से काट देंगे और पत्तल पानी बंद। दो-दो बेटियाँ है वर ढूँढ़ने निकलेंगे तो यही ताना सुनने को मिलेगा कि तुम तो दुसाध - चमार हो गए, उनके साथ उठते-बैठते हो, उनकी बातें करते हो तो ब्याहों उन्हीं के बाल-बच्चों से अपनी बेटियाँ। माना कि तुम्हारी सोच काफी ऊँची है, ये तुम्हारी सोच है, न कि बिरादरी की।Þ सूरजमुखी की इन दलीलों के जवाब में श्रीमुख मिश्रा जब अपनी ज़बान खोलता हैं, तब वह काफी क्रान्तिकारी लगता है। वह जात और ब्राह्मणत्व के त्याग की क्रान्तिकारी अवधारणा पेश करता नज़र आता हैं, तुम क्या जानों दुसाधों-चमारों के साथ बैठने में क्या है, मैं जानता हूँ। मैं यूँ नहीं बैठता कुछ मतलब है उनसे, जहाँ तक बिरादरी की बात है वे जो समझे, और फिर कुछ त्याग के बाद ही फल मिलता है तब समझों मैं भी त्याग कर रहा हूँ .. जात का त्याग, ब्राह्मणत्व का त्याग।Þ वह यह भी उल्लेख करना लाजमी समझता है कि पूजा-पाठ और रामनामी चादर ओढ़ने में कुछ नहीं हैं, - मैंने देखा-देखी कुछ नहीं छोड़ा है, उन्होंने देखा-देखी छोड़ा है। इससे मेरा जाता ही क्या है? इसकी आड़ में उन्हें कितना मूर्ख बनाया जाएगा, कितना हम ओढ़ेंगे रामनामी चादर? तुम चुप हो जाओ।Þ मनुवादी पिता के विरोधीशिखर पर खड़ा श्रीमुख मिश्रा अपने पिता के विचारों के खिलाफ़ अलख जगाने का उत्साह दिखाता है। कथाकार की सधी कलम इसे बेहद खूबसूरती से प्रस्तुत करती है। श्रीमुख मिश्रा अपने पिता देवकी मिश्रा और उन जैसे लोगों की कारस्तानी का बयान करते हुए कहता हैं, ßआप जैसे लोग ही समाज को कई वर्गों में बाँटे हुए हैं और जब भी आप जैसे लोगों पर, बाह्मणों पर खतरा मंडराया, समाज में एक शगूफा छोड़ दिया है। आप जैसे लोगों ने ही बंदर की पूजा करवायी और इंसान को बंदर से भी बदतर स्थिति दी, लेकिन अब आप का समय ^चुक* रहा है, आप मरणासन्न होते जा रहे हैं और आपकी चलाई, परंपरा के यदि इस गाँव को ही पूरा देश मान लूँ तो खिलाफ़ हूँ मैं। मैं इसके ख़िलाफ अलख जगाऊँगा। वह परिवार, टोला (मुहल्ला) और गाँव में विद्रोही तेवरों का प्रतिबंध बन जाता है।

उसके दिन का काफी समय दलितों की बस्ती में गुजरने लगता है। वह दलित बस्ती में वर्ण-व्यवस्था, ग़ैर-बराबरी, अशिक्षा, ग़रीबी के ख़िलाफ संघर्न की मुहिम चलाने का आह्वान करने लगता है। पाठक ऐसे सवर्ण चरित्र के बारे में क्रांतिकारी और व्यवस्था परिवर्तन का प्रतिनिधि चरित्र होने की राय बना लेता है। पर कहानी के प्रथम चरण के बाद जैसे ही मध्य भाग में पहुँचती है, पाठकों की बनी हुयी राय पर एक घटना तुनारापात करती है। घटना इस तरह घटती हैं कि दलित हक के लिए प्राइमरी स्कूल के मास्टर यदुनंदन पांडे से श्रीमुख मिश्रा लड़ जाता है, और ऐलान करता हैं कि स्कूल में शिक्षा के संदर्भ में छुआछूत नहीं चलेगा। इसके बाद पूरे ब्राह्मण टोले में यह बात जंगल की आग की तरह फैल जाती है। पंचों की सभा में श्रीमुख मिश्रा की पेशी होती है, और उसे बिरादरी से बाहर निकालने का बुजुर्ग ब्राह्मण रामनंदन पांडे द्वारा भय दिखाया जाता है। रामनंदन पांडे श्रीमुख मिश्रा से कहते है – सुना है तुम आजकल दुसाधों – चमारों के बीच खूब उठ-बैठ रहे हो, क्या जात-बिरादरी से लोटा-पानी बंद भी हो सकता है। हो रही जवान तुम्हारी बेटियों के ब्याह में बाधा भी पड़ सकती है ये भी सुना है कि काफी ऊँची-ऊँची बातें करते हो उन लोगों के बीच, उन्हें अंखफोड़ कर रहे हो, इसका दुनपरिणाम क्या होगा, कभी सोचा है? भस्मासुर की स्थिति न हो गई तो कहना। ख़तरे की निशानी है ये ब्राह्मणत्व पर, उस धंधे पर जो युगों से हम लोग कब्जाए हुए हैं। तुमसे यही कहूँगा कि वहाँ उठना-बैठना बंद करो। जिसकी जैसी स्थिति है रहने दो, क्योंकि इसमें हमारा ही नफा है। स्थिति बदलेगी तो हम लोगों को बदलना पड़ेगा।þ श्रीमुख मिश्रा के अतीत को देखते हुए पाठकों को ऐसा लगता है कि वह इस दंभपूर्ण, शातिर सवर्णवादी गोलबंदी के ख़िलाफ खड़ा होगा। पर श्रीमुख मिश्र अपने वर्गीय चेतना से दूर होना तो दूर, उल्टे वह उस चेतना को नए सिरे से स्थापित करने की शातिर चाल चलता हुआ दिखायी देता है। यहाँ से कहानी की दिशा एकदम बदल जाती है। वह सवर्ण मानसिकता के पुरोधाओं को इस तरह आश्वस्त करता है – आप जो सोच रहे हैं वही सही नहीं है। एक बात पर गौर करें कि अब उन्हें ज्यादा दिन तक बहला-फुसला कर नहीं रखा जा सकता है। अंकुर को गलाया जा सकता है, लेकिन उसे पेड़ बनने से नहीं रोका जा सकता तो अब वे खुद पेड़ बनने को उत्सुक और उतावले हैं। मैं चाहता हूँ कि उन्हें पेड़ बनाने का श्रेय मुझे मिले और इसके लिए ज़रूरी है उनके साथ उठना-बैठना, बोलना-बतियाना। यदि ऐसा नहीं करता हूँ तो हो सकता है कि कोई दूसरा नेतृत्व प्रदान करे या उन्हीं में से कोई आगे आ जाए। उसे रोकने के लिए ज़रूरी है उनमें पैठ जमाना। एक बात जानते हैं कि बनी-बनाई लीक पर चलने वाला दूसरे का आश्रित हो जाता है। तो मैं चाहता हूँ कि वे मेरे आश्रित हों। आप इत्मीनान रखें हम और ब्राह्मणत्व पर खतरा नहीं आएगा क्योंकि मैं या मेरे जैसे अगुवाई करेंगे।þ यहाँ उसके सवर्ण अवसरवाद चरित्र की पहली झलक दिखायी पड़ती है, बाद में इस चरित्र के अन्य पहलुओं से भी पाठकों का साक्षात्कार होता हे। इस अवसरवादी चरित्र की शातिर योजनाओं पर एक दलित द्वारा ही तुनारापात किया जाता है। रामकेसर के युवा बेटा कमला की सोच पुरानी पीढ़ी से अलग है। वह दलित उत्पीड़न के प्रतिकार के सिलसिले में दलित नेतृत्व की ही वकालत करता है। उसका यह मानना है दलित मुक्ति चेतना के बिना उत्पीड़न के प्रतिकार की वास्तविक इबारत नहीं लिखी जा सकती। वह सवर्ण श्रीमुख मिश्र गाँव के ही भूमिहर (सवर्ण) के पास यह गुहार लेकर जाता है कि वह कमला का किसी तरह सफाया करे। दरअसल कमला के अस्तित्व से श्रीमुख मिश्रा का अस्तित्व समाप्त होने की आशंका बढ़ जाती है, यानी उसके नेतृत्व के सपनों पर कमला की मौजूदगी का यथार्थ भारी पड़ता है। टोले में जब श्रीमुख मिश्रा आता है, तब कमला उसके चरित्र को बेनकाब करते हुए पूछता है, ßमैं जानता हूँ कि आप यहाँ क्यों आते हैं और चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं। इसलिए न कि अपनी बातों में हम लोगों को बहला दें और भगवान बने रहे। आपने यहाँ आकर कहा कि आप इनके बड़े हितैनी हैं, इनका जीवन स्तर सुधार रहे हैं शिक्षित कर

रहे हैं और दूसरी तरफ़ मुनेशर सिंह जैसे शातिरों से भी हाथ मिला रहे हैं। आप हमारा जीवन स्तर क्यों सुधारना चाहते हैं, बताएंगे? नहीं बताएंगे क्योंकि हम लोगों की आड़ में आप अपना मतलब सिद्ध करना चाहते हैं। आप जानते है कि हम लोग क्या हैं और क्या होने जा रहे हैं। गरीब-पीड़ितों की भलाई की माला रटकर आप ओहदेदार-शोहदेदार हो जाएँ। पहले ब्राहाण के नाम पर पूजे जाते थे और अब ग़रीबों-दलितों के भलाई की बात कहकर पुजाते रहें। ßवह इसके साथ अवसरवादी परंपरा की तह तक भी जाता है, और श्रीमुख मिश्रा को निरुत्तर कर देता है - आप क्यों नहीं बोले हमारी तरफ़ से सिंहों के ख़िलाफ? इससे क्या साबित होता है ? युगों से आप पाला बदलते रहे हैं। जब-जब आप पर ख़तरा आया कई-कई शगूफे छोड़कर अपनी रक्षा की, जिसका कि इतिहास हैं। जिससे डर हुआ, नफा देखा उसकी तरफ हो गए। आज हमसे आपको खतरा हो रहा है तो हमारी बातें कर रहे हैं। सही मायने में हमारे उत्थान के लिए किसी ने नहीं सोचा। हाँ, अपने मतलब की रोटियाँ सेंकते रहे हैं। युगों से हमारी बात की जा रही है, लेकिन हम जहाँ के तहाँ बैठे हैं, और बात करने वाले कहाँ से न जाने कहाँ जा बैठे तो आप भी उस परंपरा को जीवित करने आते हैं यहाँ पर।Þ

परिवर्तन का झाँसा देकर इस्तेमाल करने वाली सवर्ण अवसरवादिता से कमला बस्ती के लोगों को सावधान रहने की हिदायत देता है। वह कहता है मीठी बातों की हकीक़त से सावधान रहने की ज़रूरत है। वह श्रीमुख मिश्रा से साफ़ तौर पर जाने की बात करते हुए, बस्ती के लोगों पर इस अंदाज में बिफरता है - और तुम लोग हो कि जिसने दो मीठी-मीठी बातें कर दीं तो उसे अंधा बनके पूजने लगे। आँखे खोलकर देखो। बिना बुलाए कोई आए और हित-अहित की बात करे तो समझ लो कि तुम्हें कहीं से हिंज़ड़ा बनाया जा रहा है और ये मिश्रा तुम्हें हिंज़ड़ा बना के रख देगा।Þ

कहानीकार विपिन बिहारी ने बहुत प्रभावी ढंग से सवर्ण अवसरवाद बनाम दलित दृ-िट को कथा-सूत्र में पिरोया है।

10.5 आमने-सामने : कथावस्तु

विपिन बिहारी ने, पारंपरिक सवर्ण अवसरवादी चरित्र की हकीकत से रू-ब-रू होते हुए दलित नेतृत्व के सवाल को ^आमने-सामने* की कथावस्तु के रूप में चुना है। उत्पीड़न, शो-ाण, बेगार, प्रतिशोध जैसे सवाल भी कथावस्तु में पिरोये गये हैं। ^आमने-सामने* कहानी के कथानक के माध्यम से कथावस्तु के इन संदर्भों को समझने का प्रयास किया जाए।

कहानी का नायक श्रीमुख मिश्रा कर्मकाण्डी पिता देवकी मिश्रा का बेटा है। उसकी पत्नी सूरज मुखी ब्राह्मणवादी अनु-ठान और जीवन पद्धति में आस्था रखती है। देवकी मिश्रा और सूरजमुखी दलित विरोधी और ब्राह्मणवाद वर्चस्व के पक्षधर भी हैं। श्रीमुख मिश्रा का आचार-विचार पिता देवकी मिश्रा और पत्नी सूरजमुखी से एकदम प्रतिकूल है। वह आए दिन अपने पिता से पारंपरिक वर्णवादी सोच के मुद्दे पर बहस करता हैं। जहाँ इसके पिता ब्राह्मणवाद के पक्ष में दलीले देते हैं, वहीं वह इस संस्कार के ख़िलाफ अलख जगाने की बात करता है। कहानीकार ने इन वृतांतों का चित्रण बेहद कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। श्रीमुख मिश्रा के उत्साह को करते पिता कहते हैं , ßतुम क्या अलख जगाओगे रे। ब्राह्मणवादियों का तुम कुछ नहीं बिगाड़ पाओगे, मुँह के बल न गिरा तो कहना। सारे ब्राह्मण तुम्हारे ख़िलाफ़ हो जाएंगे।Þ देवकी मिश्रा अपने बेटे की मूर्खता पर हँसने लगे थे - तुमने ही न कहा कि ब्राह्मणों पर जब भी ख़तरा मंडराया है तो उसने एक नया शगूफा छोड़ दिया तो फिर कुछ छोड़ा जाएगा। यहाँ के लोग इतने ब्राह्मणवादी हैं कि लाख कहे कोई लाख पढ़-लिख जाए, लाख विरोध करे, लेकिन मंदिरों में वह सिर नवाने अवश्य

जाएगा। ‘‘दावा ठोका था देवकी मिश्रा ने।Þ पर बेटा अपने मुसूबे को ऊँचा रखता है, वह पिता को कहता है, ßयह सच है कि युगों से आ रही ब्राह्मणी व्यवस्था लोगों के दिल-दिमाग में एक संस्कार बनकर पसरी हुई हैं। जड़ दूर और मजबूत रूप में फैल गई हैं कि उस पेड़ को उखाड़ फेंकना आसान नहीं है, लेकिन कोशिश करूँगा। लोगों को जगाऊँगा, उन्हें असल बात समझाऊँगा।Þ पिता की मौत के बाद मोर्चा सूरजमुखी ने संभाल लिया। वह पति के दलितों की बस्ती में जाने पर घोर आपत्ति करती, पर पति एक भी नहीं सुनता। पत्नी को इस बात की चिन्ता सताती कि बेटियों का विवाह कैसे होगा, यदि पति इसी तरह दलितों की बस्ती में जाते रहते हैं। श्रीमुख मिश्रा जब पहली बार घर में माँस बनाने में जुटा तब पत्नी का विरोध चरम पर पहुँचा, उसने पति से कहा – ‘‘बस सब भ्र-ट कर दोगे, कुछ तो बचा के रखो, बाबूजी मर गए तो इसका मतलब ये नहीं कि सब मर गया ... बिरादरी .... पूजा पाठ, संस्कार।Þ वह माँस बनाने से साफ़ इन्कार कर देती है। श्रीमुख मिश्रा खुद ही माँस बनाने में जुट गया। मसाले की गंध जब मुहल्ले में फैली, जब जनेऊ धारी ब्राह्मणों ने पूछा, क्या बन रहा है, तब उसने ज़ोर देकर कहाँ – खस्सी का माँस।

श्रीमुख मिश्रा ब्राह्मण टोले का पहला ऐसा व्यक्ति बनता है जो दलित बस्ती (दुसाध-चमार-टोली) जाकर छुआछूत के ख़िलाफ अलख जगाता है। वह वहाँ के लोगों के साथ उठता-बैठता पानी पीता है। वह शरीफा मोची, तपेसर मोची, हीरामन, रामलगन दुसाध आदि समाज प्रतिनिधियों से आग्रह करता है कि दलितों में सबसे पहले यह समझदारी बने कि वे नयी पीढ़ी को पढ़ाएँ। टोले के लोगों को श्रीमुख मिश्रा हितै-ी लगता है, वह उनका प्रतिनिधि लगने लगता है। तपेसर मोची कहता है, ßबात इ है न पांडे जी कि कोय राह दिखाने वाला नहीं मिला। हम इसी को सिगनी मानते रहे, आप जैसा कोय नहीं आया ई टोले में आज तक। आपै पहली बार आ रहे हैं। जहाँ आँखे बंद हो तो बंद आँखों से ही न देखेंगे, लेकिन अब कुछ पढ़-लिख रहे हैं।Þ पढ़ाई के दौरान दलित भेद भाव पर श्रीमुख मिश्रा यदुनंदन पांडे से उलझ जाता है – कुछ भी हो पांडे जी लेकिन अब इस गाँव में, इस स्कूल में किसी के साथ भेदभाव बरता नहीं जाएगा। सभी को समान अधिकार प्राप्त है। आप कौन है संस्कार चलाने वाले, छुआछूत के पेड़ को पोसने वाले? ‘‘आप नहीं मानेंगे तो इसकी रिपोर्ट होगी और इसमें शायद आपकी मास्टरी भी जा सकती है। स्कूल एक सार्वजनिक चीज है, आप भी हैं यहाँ और आपके द्वारा किया गया ये रवैया कायदे-कानून के दायरे में आ जाएगा।Þ उसके इस कृत्य की दो तत्काल फलश्रुतियाँ हुयीं। दलितों को श्रीमुख मिश्रा हितै-ी ही नहीं नेता भी लगने लगा। दूसरी बात यह हुयी कि सवर्णों ने श्रीमुख मिश्रा के विरोध में गोलबंदी शुरू की। पंडितों की पंचायत में श्रीमुख मिश्रा की पेशी हुयी। इस पेशी के पहले की कथा और बाद की कथा में पर्याप्त अंतर है। कथासूत्रों को घटनाओं में पिरोकर कथाकार सवर्ण अवसरवाद की कलई खोल देता है। दरअसल श्रीमुख मिश्रा शातिर खिलाड़ी की तरह दलितों के बीच अपनी चाल चल रहा था। ब्राह्मण की सभा में वह स्वीकार करता है कि वह नेतृत्व की युक्तियाँ ही ढूँढ़ रहा था, जिससे अंततः ब्राह्मण वाद का ही पो-ाण होगा। इसके बाद दो और घटनाएँ होती है। श्रीमुख मिश्रा बेहद चतुरायी से दलितों के बीच उन्हीं का साथी होने का भ्रम पैदा करता है और दूसरी तरफ़ सवर्णों से मिलकर उभरते दलित नेतृत्व को समाप्त करने का -ाडयंत्र रचता है।

यह खास तौर पर ध्यान देने की बात है कि घटनाओं का चित्रण करते समय चरित्रों का विकास सपाट ढंग से नहीं किया गया है। श्रीमुख मिश्रा अपने मंतव्य का खुलासा ब्राह्मणटोली में करता है, उनके बाद जब दलित मुद्दे पर कही गयी अपनी ही बात उसे अस्वाभाविक लगने लगती है। लेकिन महीनों से अर्जित किये गए अभ्यास के कारण वह जल्दी अंतर्दंद्वों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

दलित उत्पीड़न की सदियों पुरानी नृशंस समाज-व्यवस्था का क्रूरतम रूप है – दलित महिलाओं का सवर्ण पुरु-ाों द्वारा बलात्कार या उनकी कमजोरी-मजबूरी का फायदा उठाकर यौन-शो-ाण।

ßयत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते ....Þ का जयघो-ा करने वाला भारतीय समाज इसे अस्वाभाविक भी नहीं मानता। अस्वाभाविक तो तब होता है, जब बदलते समय में प्रतिशोध की सुगबुगाहट से अकूलाता कोई दलित युवक बलात्कार का बदला बलात्कार से चुकता करना चाहता है। यह भी सही है कि कोई भी विवेकी सोच करने वाला परिवर्तनकामी चिन्तन इसे जायज नहीं ठहराएगा। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि यह दलित चेतना का वह रूप है, जो अभी हाल ही उभरा है और जिसमें सदियों पुराने उत्पीड़न के प्रति जबर्दस्त आक्रोश है। पच्चीस व-ीय हरिहर पांडे का बेटा बारह व-ीय रामकेसर दलित की बेटी का बलात्कार कर देता है। रामकेसर का शिक्षित बेटा कमला इसका प्रतिशोध बलात्कार ही मानता है, और हरिहर पांडे की बेटी का बलात्कार करता है। इस घटना के बाद वह फरार हो गया। जहाँ रामकेसर बेटे की करतूत के बाद खूब रोया, चिंतित हुआ, वहीं दुसाध-चमार टोली के दलित बहुत प्रसन्न हुए। कमला की इस हरकत के बाद हरिहर पांडे भूमिहर (भूमिपति सवर्ण) भुवनेश्वर सिंह के पास कमला के सर्वनाश की याचना लेकर गया। कुछ महीनों बाद कमला वापस आया। उसके चाल-चलन में अपने कृत्य को लेकर कोई पछतावा नहीं था। दरअसल उसने दुश्मनी के ख़िलाफ तर्क गढ़ लिया था। कथाकार की सधी कलम बयान करती है, ^^बलात्कारी होने की शर्मिंदगी उस पर कहीं भी नहीं दीख रही थी। हरिहर पांडे के बेटे ने उसकी बहिन के साथ बदतमीजी कर दुश्मनी की थी तो उसे भी हरिहर पांडे की बेटी के साथ बदतमीजी कर दुश्मनी निबाहने में शर्मिंदगी कैसी? उसने बलात्कार के ख़िलाफ तर्क नहीं गढ़ा था बल्कि दुश्मनी के ख़िलाफ तर्क गढ़ा था।Þ श्रीमुख मिश्रा का एकाधिपत्य लगभग खत्म हो रहा था। उनके रहनुमा बनने के सपने को कमला ने मात देनी शुरू की। श्रीमुख मिश्रा भी दौड़ा हुआ भुवनेश्वर सिंह के पास पहुँचा। इधर कमला भी सतर्क हुआ। जब सवर्णों ने घात लगाकर कमला व उनके साथियों पर हमला किया तब सचेत कमला ने दोस्तों के साथ उन्हें खदेड़ दिया।

इस बीच ^मरी* उठाने के मुद्दे पर सवर्णों और चमारटोली के बीच विवाद बढ़ा। फौजदार सिंह की गाय मरी, इस बार चली आ रही रूढ़ि पर जबर्दस्त आघात यह हुआ कि शरीफा ने मरी उठाने से साफ़ इनकार कर दिया। उसने बिना अंतर्द्वन्द के आग्रह करने वालों को सपाट उत्तर दिया, ßसब नफा पोसनहार लिया...दूध खाया, घी चाटा, और अब मर गई तो हमको ही ठेल दिया जबकि हमहूँ आदमिये नफा उठा त ^मरी* को भी किरिया करम करे। अब चीर-फाड़ करना हमको ठीक नहीं लगता है, मन घिनाता है।Þ इस पूरे प्रकरण के दौरान श्रीमुख मिश्रा तटस्थ रहा। धीरे-धीरे दलित नेतृत्व खिसकता हुआ कमला की तरफ़ स्थानांतरित होने लगा। कमल दलित टोले के लोगों को श्रीमुख मिश्रा के -ाडयंत्रों से आगाह करता है। साथ ही वह श्रीमुख मिश्रा के सवर्ण अवसरवादी चरित्र को भी बेनकाब कर देता है। वह श्रीमुख मिश्रा को दलित बस्ती से भगा देता है। कथाकार ने इन दोनों संदर्भो को बेहद मार्मिकता से चित्रित किया है – तो अब आप जा सकते हैं।Þ कमला उठने लगा तो जमा लोगों पर बिफरा – और तुम लोग हो कि जिसने दो मीठी-मीठी बातें कर दी तो उसे अंधा बनके पूजने लगे। आँखे खोलकर देखो। बिना बुलाए कोई आए और हित-अहित की बात करे तो समझो तुम्हें कहीं से हिंज़ड़ा बनाया जा रहा है और ये मिश्रा तुम्हें हिज़ड़ा बनाके रख देखा।Þ लोगों पर कमला की बातों का असर ^भन्न* से हुआ और वे छिटकने लगे। श्रीमुख मिश्रा नंगा हो गए थे।Þ कमला ने, उन्हें बेआबरू कर दिया था। जिसकी उन्हें कल्पना तक नहीं थी। बड़ी मुश्किल से उठे, खटिया से एक बीमार की तरह, अपनी

नंगई ढाँपते हुए जाने लगे। पीछे मुड़कर देखने की हिम्मत नहीं हुई थी जैसे देख लेंगे तो उन्हें कुत्ता नोच लेगा।

कहना न होगा दलित दृन्टि की वकालत करती यह रचना अपने सरोकार में पूरी तरह सफल होती है। कथा संरचना की बुनावट कसी हुयी है।

10.6 आमने-सामने : भारतीय गाँव तथा सवर्ण एवं दलित समाज

^आमने–सामने* कहानी में भारतीय गाँव में जारी दलित भेद, उत्पीड़न और बहि-करण को मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। गाँवों में प्रायः दो तरह के टापू साथ–साथ जीवनयापन करते हैं। लेकिन जहाँ सवर्ण समाज सभी प्राकृतिक और सभ्यता के विकास क्रम में अर्जित संसाधनों पर एकाधिकार जमाए रहता है, वहीं दलित समाज को इनसे योजनाबद्ध तरीके से वंचित किया जाता है। इतना ही नहीं दलित स्त्रियों को यौन शो-ाण का भी शिकार होना पड़ता है। आमने–सामने कहानी में भी दलितों को अध्ययन से वंचित करने के -ाडयंत्र को बखूबी चित्रित किया गया है। दलितों से काम लिया जाता है, खेत–खलिहानों में उनका पसीना बहता है। पर अक्सर या तो उन्हें बेगार खटना पड़ता है, या फिर उन्हें काम के एवज में अत्यल्प मजदूरी दी जाती है। दूसरी तरफ यदि कोई दलित विरोध की हिम्मत जुटाता है, तब उसे जबर्दस्त उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। कहानी में चित्रित गाँव में भी जब पहली बार शरीफा मोची मरे जानवरों की लाश न उठाने की बात करता है, उसे जबर्दस्त विरोध का सामना करना पड़ता है। जो श्रीमुख मिश्रा दलित अधिकारों के लिए संघर्-ा की बात करता है, वह भी चतुरायी भरी चुप्पी साध लेता है। शरीफा का तर्क है कि जो जानवरों का लाभ लेता है, उसे ^मरी* उठाना चाहिए ओर चमड़ा भी उतारना चाहिए। वह श्रीमुख मिश्रा से कहता है – ^^बात इ ह है पंडित जी कि हम ^मरी* उठाते रहे। बाप उठाता था, अब मैं उठा रहा हूँ। मेरे सा मेरा बेटा भी है। ... पोसनहार ^मरी* काहे नहीं उठाता? त पंडि जी, अब हम ऊब गए हैं ^मरी* का चमड़ा छीलते–छीलते, कुछ करिए पंडित जी ..A॥ कहानी में उत्पीड़न के अन्य नृशंस रूपों का भी चित्रण किया गया है। रामकेसर दुसाध की बेटी का बलात्कार हरिहर पांडे का बेटा करता है। अन्य महिलाओं के साथ हुए बलात्कारों का कहानी में प्रच्छन्न उल्लेख करते दलित उत्पीड़न के काले इतिहास का जिक्र किया गया है। दलित उत्पीड़न के ख़िलाफ समझदारी विकसित करने वाले कमला पर भी संगठित सवर्ण घात लगाकर हमला करते है। कहानी सवर्ण ओर दलित समाज की दो परस्पर विरोधी दुनिया का प्रभावी वर्णन करती है।

10.7 सवर्ण अवसरवाद, धर्मसत्ता और दलित

विपिन बिहारी ने उस सवर्ण अवसरवादी चरित्र को बेनकाब किया है, जो धर्मसत्ता का इस्तेमाल कर दलित को दोयम दर्जे का हकदार बना देता है। धर्म संरचनाए दलित और स्त्री को गुलाम बनाने के लिए अनेक विधि-विधानों अनु-ठानों का इस्तेमाल करती है। श्रीमुख मिश्रा जब दुसाध–चमर टोली (दलित बस्ती) में जाने लगता है, तब पिता देवकी मिश्रा संस्कार हीन, संस्कृति विरोधी घो-ित कर देता है – अरे कपूत, मेरा संस्कार ठीक है, तुम अच्छे मुहूर्त में पैदा हुए, लेकिन फिर इतना बड़ा नास्तिक कैसे निकल गए रे? राड़–रेयानी जैसी तुम्हारी सोच, चाल–व्यवहार है तो कल ^ब्राह्मण* खत्म होगा, उसका मूल्य गिरेगा ओर युगों से चली आ रही परंपरा समाप्त होगी। मेरी नहीं मानोगे तो इस घर के दरवाजे तुम्हारे लिए बंद होंगे, जो अपने ही समाज का, संस्कृति का घातक हो तो उसे त्याग ही देना चाहिए रिश्ते में अपना पूत ही क्यों नहीं हो॥ धर्मसत्ता के अन्य रूपों का भी कथाकार ने चित्रण किया है, जिनके आधार पर

दलित उत्पीड़न को जायज ठहराया जाता है। उसी तरह पढ़ने के अधिकार से वंचित करने वाली धर्मशास्त्रीय परंपरा का भी कहानी में उल्लेख किया गया है। अब जबकि दलित आवाज के मुखर होने का दौर आया है, तब सवर्ण अवसरवादी चरित्र ने ऊपरी तौर पर पाला बदल लिया है, लेकिन अंततः वह सवर्ण हित में ही सक्रिय है। इसका भी कहानी में प्रभावी वर्णन किया गया है। नायक श्रीमुख मिश्रा ऐसा ही चरित्र है।

ßआमने-सामनेÞ कहानी में दलित अस्मिता निर्माण के दौर में नेतृत्व के संकट और उसके धीरे-धीरे बनते-उभरते स्वरूप का भी चित्रण किया गया है। श्रीमुख मिश्रा जब दलित बस्ती में बार-बार जाता है, तब उसका मंतव्य एक ही होता है – बदलते दौर में बन रही या उभर रही दलित अस्मिता का नायकत्व उसे ही हासिल हो। सदियों में प्रताड़ित-शोन्ति दलितों में भीतर-भीतर असंतो-न और प्रतिकार की चेतना का निर्माण हो रहा था। लेकिन सवर्ण आधिपत्य और उसकी मजबूत किलेबंदी के चलते दलितों की पुरानी पीढ़ी आतंक के खिलाफ़ मुँह खोलने की एकबारगी हिम्मत नहीं जुटा पाती। जैसे-जैसे दलितों में शिक्षा और चेतना का विस्तार होता है वे मुँह खोलने, प्रतिशोध प्रकट करने और नेतृत्व हासिल करने की स्थिति में जब तक नेतृत्व का संकट रहता है, तब श्रीमुख मिश्रा जैसा सवर्ण अवसरवादी चरित्र मौके का लाभ उठा दलित चेतना को चतुरायी पूर्वक समाप्त करने का -ाड़यंत्र रचता है। पर जैसे ही कमला जैसा दलित चेतना का वाहक चरित्र अवसरवादी चरित्र को बेनकाब करता है, दलित नेतृत्व के उभर रहे नेतृत्व क्षमता से पाठक रू-ब-रू होता है।

10.8 दमन और उत्पीड़न की परंपरा में प्रतिशोध का हस्तक्षेप

सदियों पुरानी दमन, उत्पीड़न, बहि-करण की धर्मशास्त्रीय परंपरा के ख़िलाफ दलित प्रतिशोध या हस्तक्षेप भी जारी है। उभरते हुए भारतीय समाज में यह प्रतिशोध या हस्तक्षेप पहले से कहीं अधिक मुखर होता नज़र आ रहा है। उत्पीड़न का ही एक पक्ष है बलात्कार या यौन शो-ाण। जब हरिहर पांडे का बेटा रामकेसर दुसाध की बेटी के साथ बलात्कार करता है, तब रामकेसर दुसाध का बेटा कमला भी हरिहर पांडे की बेटी का बलात्कार कर प्रतिशोध प्रकट करता है। गौर करने की बात है कि वह बलात्कार के ख़िलाफ तर्क नहीं गढ़ता। वह दुश्मनी के ख़िलाफ तर्क गढ़ता है। लिहाजा उसे अपने कृत्य पर कोई पछतावा नहीं होता। दूसरी तरफ़ हरिहर पांडे एक ही कृत्य के लिए कमला का तो सर्वनाश चाहता है, पर अपने बेटे के बारे में चुप्पी साधता वह दबंग भूमिहर भुनेश्वर सिंह से याचना करते समय जो प्रश्न करता है, उससे सदियों पुराने उत्पीड़न की झलक मिलती है। वह कहता है, ßबचाइए जजमान आपके होते हुए भी गाँव में ये अनर्थ हो कि एक पुरोहित की कन्या के साथ शूद्र बलात्कार करे, क्या ये क्षम्य है?Þ जाहिर है, उत्पीड़न की परंपरा में प्रतिशोध का उभरता हुआ स्वरूप कमला के चरित्र के माध्यम से प्रकट हुआ है। कमला के बहन के बलात्कार पर हरिहर पांडे को किसी प्रकार का दुख, दर्द महसूस न होना सवर्ण मानसिकता में दलित स्त्री के प्रति हीन दृ-िट को ही दर्शाता है। दलित की बेटी के लिए उसकी अस्मिता का कोई मायने नहीं है। मनुस्मृति में दलित किए गए असम्मान, अपमान बलात्कार, उत्पीडन पर सवर्ण पुरु-ा के लिए किसी भी प्रकार की सजा का प्रावधान नहीं है। इसके उलटे यदि शूद्र पुरु-ा द्वारा सवर्ण स्त्री के बलात्कार के जघन्य अपराध मानते हुए, इसके लिए प्राणदंड का ही प्रावधान रखा गया है। कहानी-स्प-ट रूप से सवर्णों की इस मानसिकता पर जिसे धर्म ग्रंथों की पूर्ण रूप से सहमति है पर मार्मिक प्रहार करती है। भारतीय दंडसंहिता में बलात्कारी के लिए कठोर सजा के प्रावधान है सवर्ण पुरु-ा तथा दलित पुरु-ा द्वारा बदले की भावना से किया गया बलात्कार, दोनों ही कानून की नज़र में अपराध है। लेकिन लेखक इस कहानी में

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

कमला द्वारा पांडे की बेटी के किए गए बलात्कार को, दलितों अपमान के बदले में किए गए कृत्य के रूप में दर्शाते हैं। स्त्री चाहे सवर्ण हो अथवा दलित दोनों ही स्थितियों में अपमान या तिरस्कार को दर्शाने के पुरू-ावादी सोच की दर्दनाक स्थिति से गुजरती है। कमला द्वारा दलित स्त्री के अपमान का बदला लेने के पीछे सदियों से ब्राह्मणवाद द्वारा किए गए अनंत यातनाओं के प्रति उभरता आक्रोश और प्रतिशोध है। दलित वर्ग में जगे आत्मबोध ने उन्हें उत्पीड़न, शो-ाण के पीछे की उस दमनात्मक सोच को समझने की दृ-टि देकर संघ-र् करने का साहस भी पैदा किया है। हजारों व-ार्ें की परंपराओं को नकारकर दलित वर्ग अंधविश्वास की उस धारा से मुक्ति का मार्ग स्वयं भी ढूँढ़ रहा है।

⁄मरी* उठाने के प्रसंग में भी कमल का हस्तक्षेप प्रतिशोध के स्वरूप को गढ़ने की कोशिश करता है। वह शरीफा मोची से कहता है, आदमी होकर हम म्लेच्छ नहीं कहाएंगे। एक ही रंग-रूप का होकर एक अछूत बन जाए, एक ऊँच तो वैसा काम क्यों करेंगे। अब से ऐसा कुछ नहीं होना चाहिए। हमारे साथ मत उठो-बैठो, मत खाओ-पीओ, लेकिन अब ⁄मरी* नहीं उठेगी किसी भी हाल में (1) कहानी में प्रतिशोध का स्वरूप सवर्ण अवसरवादी श्रीमुख मिश्रा के चरित्र को कमला द्वारा बेनकाब करने के प्रसंग में भी नज़र आता है।

10.9 दलित उत्पीड़न का संदर्भ और स्वानुभूति एवं सहानुभूति का प्रश्न

दलित लेखन के आरंभिक दौर में इस मुद्दे पर काफी बहस हुयी कि स्वानुभूति को दलित साहित्य की केन्द्रीय चेतना मानी जाए या नहीं। दलित लेखकों का यह मानना था कि सहानुभूति के बल पर दलित साहित्य की वास्तविक चेतना हासिल नहीं की जा सकती। उन्होंने स्वानुभूति को दलित साहित्य या चेतना के अपरिहार्य पक्ष माना। इस कहानी में भी कमला ßस्वानुभूति चेतना का प्रतीक है, जबकि श्रीमुख मिश्रा सहानुभूति पक्ष का वाहक है। कथा संरचना इस तरह से बुनी गयी है कि बिना कहे स्वानुभूति और सहानुभूति के द्वन्द्व में कथा का विकास स्वानुभूति की विश्वसनीयता का पक्ष लेता है।**

10.10 आमने-सामने : अस्मिता की खोज और भवि-य दृ-टि का प्रश्न

"आमने-सामने" कहानी में दलित अस्मिता की खोज और भवि-य दृ-टि के प्रश्न पर भी गहराई से विचार किया गया है। दमन-उत्पीड़न और नारकीय जीवन की वर्णवादी परंपरा के बदलाव के लिए दलित अस्मिता संघ-र्रत हैं। अस्मिता की इस खोज की राह में अनेक मुश्किलें हैं। इनकी सबसे बड़ी बाधा वह दृ-टि है जो सवर्णवाद के नये दाँव का पासा है। यह नया दाँव दलित शब्दावली का प्रयोग करता है, दलित मुक्ति का जुमला दुहराता है, पर दलित नेतृत्व पर खुद काबिज होने के -ाडयंत्रों को भी रचता है।

कहानी अनेक अनकहीं कहानियों को अपने भीतर समेटती हैं। जैसे दलित नेतृत्व को लेकर सवर्णवादी दृ-टि अत्यंत संकुचित होकर रा-ट्रीय स्तर के दलित नेतृत्व को नहीं स्वीकारती। मानव अधिकार जैसे मूल्यवान सत्य मानव अस्मिता की प्राप्ति के लिए जीवन के अंत तक संघ-र् करने वाले और जैसे क्रांतिकारी नेता डॉ. भीमराव आंबेडकर को सवर्णवादी दृ-टि में सर्वोच्य स्थान नहीं दिया गया वैसे ही दलित साहित्य चेतना के विकास को भी साहित्य के सवर्णवादी आलोचक जीवनवादी साहित्य के क्षेत्र

में परंपरागत ब्राह्मणवादी विचारधारा पर चोट करने वाली सृजनात्मकता का नि-ोध और विरोध के लिए तरह-तरह की स्त्रीय रूपबंध, शिल्प नहीं, वह केवल आक्रोश का साहित्य है। दलित वर्ग के अस्मिता के संघर्-ा को नकारात्मक दृ-िट से देखने का यह प्रयास भी वहीं है जैसे श्रीमुख मिश्रा द्वारा दलित नेतृत्व का तिरस्कार करना और उसे अपने रास्ते से हटाकर दलित नेतृत्व को अपने मनमुताबिक चलाना। सवर्णवाद के श्रे-ठ होने का दंश यहाँ स्प-ट रूप से दृ-िटगत होता है। सोपानीकृत व्यवस्था में जन्मना दी गई श्रेणी से ऊपर उठने की चाहत और निरंतर प्रयास को इस सवर्णवादी पैंतरे को कहानी मार्मिक ढंग से उभारती है। श्रीमुख मिश्रा सवर्ण हित पो-ाक है, पर उसका जुमला दलितवादी है। कमला उभरते दलित नेतृत्व का प्रतीक है। दलित अस्मिता की इस खोज की भवि-य दृ-िट दलित नेतृत्व की नींव पर टिकी है। कहना न होगा कहानी इसे बखूबी उभारती है।

10.11 आमने-सामने और दलित कहानी का सौन्दर्यशास्त्र

दलित कहानी का मुख्य प्रतिमान सामाजिक बदलाव है, सामाजिक न्याय एवं सामाजिक समता का सिद्धांत है। /आमने-सामने* कहानी उस सामाजिक बदलाव की पक्षधर है, जहाँ मनुवादी व्यवस्था में पिसते /चमार* /दुसाध* जैसी दलित जातियाँ शो-ाण के प्रतिपक्ष में आक्रोश और प्रतिशोध की बुनियादी इबारत लिख रही है। यह सौन्दर्यशास्त्र नया है, जिसकी केन्द्रीय चाहत है दलित अस्मिता की स्थापना। भूमिहार-ब्राह्मण गठजोड़ कैसे दलित अस्मिता को कुचलती है, इसका सशक्त चित्रण देवकी मिश्रा, सूरजमुखी, यदुनंदन पांडे, हरिहर पांडे, भुवेश्वर सिंह जैसे चरित्रों के माध्यम से किया गया है। कहानी का नायक श्रीमुख मिश्रा दलित नेतृत्व पर काबिज होकर सवर्ण हित में ही अंततः सक्रिय है। कमला दुसाध इस अवसरवादी चरित्र को बेनकाब करता है। गाँवों में दलितों पर अनेक नियम लादे गए हैं जिन्हें नकारने का मतलब है, व्यवस्था को अस्वीकार करना, फिर व्यवस्था के हाथों दंडित होना। शरीफा मोची जानवर को उठाने और उसका चमड़ा उतारने की रूढ़ि को अस्वीकार करता है, जिसके लिए उसे प्रताड़ित होना पड़ता है। दलित स्त्रियों के बलात्कार और यौन शो-ाण को भी कहानी उभारती है, इसके ख़िलाफ उठ रहे दलित प्रतिशोध को भी कथा रेखांकित करती है। दलित कहानियों का सौन्दर्यशास्त्र दलित अनुभवों की अभिव्यक्तियों से बना है, जिसे /आमने-सामने* कहानी सशक्त ढंग से प्रकट करती है।

10.12 lkjka'k

विपिन बिहारी रचित कहानी /आमने-सामने* दलित अस्मिता की सशक्त अभिव्यक्ति है। दलित कहानियों की परंपरा में यह कहानी उल्लेखनीय उपलब्धि है। कहानी केवल शो-ाण-उत्पीड़न और प्रतिशोध का ही चित्रण नहीं करती। यह उन विसंगतियों की पड़ताल भी करती हे, जिनके चलते दलित अस्मिता या चेतना की उभार कुंद होती है। सवर्ण अवसरवाद शातिराना तरीक़े से दलित आक्रोश का लाभ उठाने की युक्तियाँ ढूंढ़ता रहता है, श्रीमुख मिश्रा जैसे चरित्र के माध्यम से इसे बेहद प्रभावी ढंग से चित्रित किया गया है। पाठकों को कहानी के आरंभ में श्रीमुख मिश्रा एक वर्गीय चेतना से मुक्त पात्र लगता है। पर कथाकार की सधी कलम धीरे-धीरे उसे बेनकाब करती है। कौतूहल या जिज्ञासा कहानी में शुरू से अंत तक उपस्थित है। कमला जैसा दलित पात्र उभरते दलित नेतृत्व का प्रतीक है। आपने इस कहानी के माध्यम से दलित, उत्पीड़न, प्रतिशोध, धार्मिक कर्मकांड के कुत्सित मंतव्य और सवर्ण अवसरवाद को बशर्ते दलित सौन्दर्यशास्त्र परखा।

इकाई 11 परिवर्तन की बात % lljtiky pkgku

bdkbZ dh :ijs[kk

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 स्वाधीनता की चेतना का विकास और हिंदी दलित कहानी

11.3 यातना की पहचान व मुक्ति की चेतना

11.4 प्रतिरोध की पगध्वनि

11.5 गाय एवं हिन्दू संस्कृति का क्षरण

11.6 सारांश

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.8 प्रश्न/अभ्यास

11.0 उद्देश्य

एम.एच.डी 19, खंड 3 की इकाई 14 के अंन्तर्गत आप सूरजपाल चौहान की 'परिवर्तन की बात' कहानी का अध्ययन करेंगे।' इस खंड की पहली इकाई में आप दलित कहानी के विकासक्रम में दलित कहानी की विशि-टता, कथावस्तु और सरोकारों से परिचित हो चुके हैं। प्रस्तुत कहानी दलित चेतना को बहुत बड़े फलक तक विस्तार देती है। स्वतंत्रता की चेतना का जन्म अन्याय के गर्भ से ही होता है। दलित कहानी की केन्द्रीय चेतना भारतीय समाज व्यवस्था के अन्यायपूर्ण श्रेणीगत विभाजन को ही नहीं नकारती है बल्कि जातिनिहाय पेशेगत बाँटवारे को धिक्कारती है और अपने मुक्ति का मार्ग स्वतः ही खोज लेती है। डॉ. भीमराव आंबेडकर की चिन्तन प्रणाली से जगी अस्मिता की चाहत एक नया इतिहास गढ़ने के लिए प्रयासरत दलित वर्ग के संघर्-ा को मानव अधिकारों के बुनियादी कहानी का लक्ष्य दलित वर्ग को गुलामी की परंपरा से अवगत कराना और गुलामी सदृश्य पेशों से मुक्ति का मार्ग खुद ही खोजने के लिए प्रेरित करना है। आकांक्षा को कृति के द्वारा बयान करना तथा संघर्-ा की एक रणनीति भी बनाना। सम्मानजनक स्थिति बनाने हेतु सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक ढांचे में आमुलाग्र बदलाव के लिए प्रेरित करना है। ब्राह्मणवादी परंपराओं के विरोध के लिए प्रतिरोध और विद्रोह की शक्ति का संचालन ही बदलाव का एकमात्र मार्ग हो सकता है। कहानी के अध्ययन के बाद आप परिचित होंगे-

- जाति व्यवस्था के उत्पीड़नकारी स्वरूप से;
- वर्चस्ववादी सत्ताकेन्द्र की राजनीति से;
- जातिगत पेशा के अमानवीय स्वरूप से;
- दलित अस्मिता के जगने से बदले मनोबल से;
- धर्म और सत्तावादियों के सवर्णवादी चरित्र से शो-ाण के विरोध में दलित समुदाय के प्रतिरोध और विरोध से;

- परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध सृजनात्मक रचना कौशल; और
- जनतंत्रीय अधिकारों के प्रति सजग होने और आंदोलनात्मक संघर्-ा द्वारा हासिल करने से।

11.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में सामानान्तर दलित साहित्य के माध्यम से अपने सशक्त और अर्थपूर्ण रचना कौशल के द्वारा समानान्तर साहित्य को आगे बढ़ाने वाले प्रमुख हस्ताक्षर हैं सूरजपाल चौहान। सूरजपाल चौहान की अभी तक प्रकाशित रचनाएँ हैं – 'प्रयास', 'क्यों विश्वास करूं' (काव्य संग्रह) बच्चे-सच्चे किस्से, (बाल-कविताएँ), हैरी कब आएगा (कहानी-संग्रह) तिरस्कृत (आत्मकथा), 'हिन्दी के दलित कहानीकारों की पहली कहाना' (संपादन), 'संतप्त' (आत्मकथा)। इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, समीक्षा, साक्षात्कार प्रकाशित।

भारत सरकार के उपक्रम एम.टी.सी. ऑफ इंडिया नई दिल्ली में प्रबन्धक के पद पर कार्यरत सूरजपाल चौहान दलित जीवन के अन्याय, उत्पीड़न, प्रतिरोधी संस्कृति और व्यापक मानवीय सरोकारों को अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्ति देते हैं। गाँव दलित समाज के लिए ऐसे शो-ाणकारी संस्थान है जहाँ अभी भी ब्राह्मणवादी मूल्य और संस्कृति की पो-ाक वास करती हैं। जहाँ अभी भी परंपराएँ श्रे-ठता के दंभ के कारण दलितों की इच्छाओं और अधिकारों की आहूति दी जाती है। सूरजपाल चौहान ने अपनी रचनाओं में गाँव की उसी अन्यायी संस्कृति को कहानियों के माध्यम से उभारा है। इन कहानियों में दलित समाज की पीड़ा और अभिशप्त जीवन का ऐसा सैलाब है जो दिमाग को झकझोर देता है। अपमान, अन्याय और ज़हालत का कारूणिक चित्रण हिन्दी साहित्य और आलोचना के स्थापित प्रतिमानों को ध्वस्त करता है। इसलिए दलित साहित्य आभिजात्य साहित्यिक प्रतिमानों के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इसे समझने की समाजशास्त्रीय दृ-िट को विकसित करना चाहिए। सूरजपाल चौहान की कहानियाँ जहाँ एक तरफ सामाजिक वि-ामता की खाई पर चोट करती हैं वहीं पर हाशिये पर रहने वाले बहुसंख्यक समाज की आस्मिता के सवाल को प्रमुखता से सामने लाती हैं।

सूरजपाल चौहान का दृ-िटकोण मानवीय सरोकारों को उद्घाटित करता हुआ बहुत ही व्यापक बन जाता है। उनकी कहानियाँ दलित संवेदना को आगे बढ़ाकर स्त्री उत्पीड़न के सवाल को भी समाहित करती हैं। 'तिरस्कृत' आत्मकथा के दूसरे संस्करण की भूमिका में वह स्प-ट करते हैं कि –"दलित साहित्य समाज के सभी हिस्से के लिए हैं क्योंकि संपूर्ण समाज हमारी वि-ायवस्तु हैं और दलित साहित्य की यही वास्तविक स्थिति है।" दलित साहित्य शिकायती साहित्य नहीं बल्कि विद्रोह और सामाजिक क्रान्ति चेतना जागृत करने का उद्देश्य रखता है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन पर जोर देता है। वर्ग-विहीन और जाति-विहीन समाज की स्थापना उसका मुख्य उद्देश्य है।" सूरजपाल चौहान के रचनाकार व्यक्तित्व की बहुत सारी खासियत हैं। जितनी शिद्दत और सामाजिक सरोकारों के साथ वे दलित जीवन, और उनकी यातना को गहराई से पकड़ते हैं उतनी ही पैनी दृ-िट से वे प्रतिरोधी मूल्य-संस्कृति की जाँच-पड़ताल भी करते हैं। वे बाल जीवन की भी मनोवैज्ञानिक पड़ताल करके बालमन की सरलता और निरागसता को उद्घाटित करते हैं। यह उनकी बाल कविताओं को देखकर जाना जा सकता है। इसी अर्थ में उनकी बाल कविताएँ भी बहुत चर्चित रही हैं। देश-विदेश की अनेक भा-ााओं में पढ़ाए जाने वाला यह लेखक विभिन्न पुरस्कारों से नवाजा जा चुका है। सृजनात्मक लेखन के साथ-साथ सूरजपाल चौहान वैचारिक बहसों में भी बेबाकी के साथ हिस्सेदारी करते हैं। वे कहते हैं –"शिल्प को दृ-िट

में रखकर दलित साहित्य को कच्चा साहित्य कहने की बातें अब छोड़नी होगी। कोई भी साहित्य अपने अनुभव से महान होता है और महान अनुभव अपने लिए नया शिल्प तलाश लेता है।"

इनकी आत्मकथा 'तिरस्कृत' गहरे मानवीय सरोकारों, सामाजिक प्रश्नों और नये अर्थ-संदर्भो को उद्घाटित करती हैं। यह एक ऐसी मर्मांतक दारूण गाथा है जो पढ़ते हुए आम पाठक को दलितों की उस दुनियां में ले जाती है जहाँ जहालत, बजबजाती बदबू, सूअर और भावशून्य पथरायी आँखें हैं। इस आत्मकथा के बारे में कमलेश्वर का कहना है कि "*यह आत्मकथा नहीं सामाजिक और सांस्कृतिक न्याय को माँगता एक 'पिटीशन' है।*"

सूरजपाल चौहान की कुछ अन्य महत्वपूर्ण कहानियों में 'बदबू', 'हैरी कब आएगा', 'अंगूरी' इत्यादि' अपने विशि-ट अर्थ संदर्भों और सामाजिक सरोकारों के कारण समानान्तर दलित कहानी आंदोलन में बहुत चर्चित रही हैं। सूरजपाल चौहान की आत्मकथा का दूसरा हिस्सा 'सन्तप्त' नाम से वाणी प्रकाशन से प्रकाशित होकर आ चुका है। यह आत्मकथा सूरजपाल चौहान के उन अनकहे पहलुओं को सामने लाती है जो पहली आत्मकथा 'तिरस्कृत' में कहने का साहस वे नहीं जुटा पाये थे। इस आत्मकथा में बालक सूरजपाल अर्थात् सुजपला के बचपन की एक-एक परत सामने आती है। गरीबी से फटेहाल भूखा बैचेन सुजपला हर तरफ से बेबसी का शिकार है। कदम-कदम पर उसकी भूख को खरीदने के लिए सौदागर बैठे हैं। भूख का दाम लगाने वालों में परिचित भी हैं और अपरिचित भी हैं। एक हैं रूसी महिला सिर्फ दो ब्रेड के टुकड़े देकर बालक सूरजपाल से अपनी देह की मालिश कराती है। दूसरी तरफ है सुजपला का अपना मामा मुंशी जो उसकी भूख के दाम के रूप में उसे बासी रोटी और सूअर के गोश्त के दो टुकड़े देकर उससे हस्तमैथुन कराता है। पेट की आग सुजपला से क्या-क्या नहीं कराती। बचपन के दिनों का ऐसा मर्मांतक और भीतर तक हिला देने वाला चित्रण हाशिए पर रहने वाले एक दलित बालक के जीवन की त्रासदी को बयान करती है। बाल उत्पीड़न का ऐसा चित्रण हमें 'बाल-विमर्श' की ओर भी उन्मुख करता है।

प्रस्तुत इकाई इनकी कहानी 'परिवर्तन की बात' पर आधारित है। इस कहानी को पढ़ने के बाद आप जान पायेंगे कि भारतीय समाज के भीतर एक ऐसा समाज भी मौजूद है जिसकी आकांक्षाओं, आत्मसम्मान और अधिकारों को मारकर उनके साथ जानवरों से भी बद्तर व्यवहार किया जाता है। हिन्दी साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द और कुछ अन्य तरक्की पसंद रचनाकारों को छोड़कर किसी ने भी इस उत्पीड़ित व्यापक समाज पर नहीं लिखा। कहानी 'परिवर्तन की बात' दलित समाज में आयी नयी चेतना, प्रतिरोध के स्वर को चिन्हित करती है। वहीं इसमें सवर्ण समाज द्वारा प्रतिक्रियात्मक कार्यों और धार्मिक पांखड़ों तथाकथित शुचितावादी मूल्यों का मखौल उड़ाती है।

11.2 स्वाधीनता की चेतना का विकास और हिंदी दलित कहानी

हिन्दी दलित साहित्य के अन्तर्गत हालांकि दलित वेदना दुःख, दर्द, विद्रोह और आक्रोश का प्रस्फुटन कविताओं के माध्यम से ही होता हुआ दिखाई देता है। चूंकि बहुत व्यवस्थित रूप में हिन्दी में दलित साहित्य का प्रारंभ तो बीते लगभग दो दशक का ही परिणाम माना जाना चाहिए लेकिन एक समानान्तर दबी हुई धारा के रूप में यह संत साहित्य (मध्ययुग) से ही प्रवाहमान रही है। यह दलित साहित्यिक धारा कभी कबीर जुलाहे की 'भीनी-भीनी बीनी चदरिया' का बड़ा बिम्ब बनाती है तो कहीं चुनौती के रूप में विद्रोह कर उठती है- 'यदि तू ब्राह्मण-ब्राह्मणी जाया' - तो आन, तो आन बाट क्यूं नहीं आया और कभी यह रैदास के मुख से समानता का गीत गाते हुए प्रस्फुटित होती रही है - 'ऐसा चाहुँ राज मैं

मिलै सबन को अन्न इत्यादि। उनके बाद दलित साहित्य की यह धारा अभी तक के नामालुम साक्ष्यों के कारण लगभग मौन दिखती है। ज्ञात साक्ष्यों के आधार पर हिन्दी की पहली दलित कविता के रूप में सन 1914 में महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में निकलने वाली पत्रिका सरस्वती में छपी मिलती है – 'अछूत की शिकायत'। ऐसा मान लिया गया है कि यह हीरा डोम नामक दलित द्वारा लिखी गई है। इस कविता में हीरा डोम ईश्वर से शिकायत करते हुए प्रश्न उठाते हैं कि समाज में जाति के आधार पर भेदभाव क्यों है? यह कविता आधुनिक समय मे सीधे-सीधे वर्णवादी साहित्यिक परंपरा में हस्तक्षेप करती है। इसलिए हिन्दी दलित साहित्य में इसे आधुनिक दलित कविता की प्रथम कविता माना जाना चाहिए और आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य का प्रारंभ भी हीरा डोम से ही माना जाना चाहिए साथ ही जहां तक हिन्दी में दलित कहानी पर बात करें तो इस पर भी विवाद बना हुआ है कि हिन्दी की पहली दलित कहानी किसे माना जाए। क्या कालक्रम के आधार पर किसी रचना को पहली या बाद की माना जाए या उसके तत्वों, वि-ाय या वैचारिकी इत्यादि के आधार पर यह तय किया जाए। हालांकि हिन्दी साहित्य की भी पहली कहानी को लेकर आज भी विवाद बना हुआ है। लगभग सौ व-र्ाों का इतिहास है हिन्दी साहित्य लेखन का, लेकिन विवाद जहां का तहां बना हुआ। ऐसे में दलित साहित्य में दलित कहानी पर बात करते हुए यहां भी पहली और बाद की कहानी को लेकर बड़ा विवाद नहीं तो छोटा विवाद तो बना ही हुआ है। हालांकि दलित साहित्य का इतिहास जैसा लेखन अभी शुरू नहीं हुआ इसलिए कालनिर्धारण पर भी शोध और लेख कम ही लिखे गये हैं। अभी तो दलित साहित्य अपने नाम निर्धारण और आस्तित्व की लड़ाई लड़ कर ही थोड़ा उभरा है। अभी लड़ाई के बाद विजय की चन्द सांसे ही ली हैं। उसने सुकून के कुछ लम्हें ही बिताये हैं। लेकिन आने वाले समय में दलित रचनाकारों को इन प्रश्नों से टकराना तो पड़ेगा ही। इतिहास भी उसे स्वयं ही लिखना होगा। चूंकि शो-ाण की अवधि लम्बी है इसलिए मुक्ति के संघर्-ा की अवधि भी लम्बी ही होगी।

श्री सूरजपाल चौहान द्वारा संपादित हिन्दी के दलित कथाकारों की पहली कहानी सन् 2004 में अनुभव प्रकाशन से छपी है। इस पुस्तक में कहीं पर भी यह बताने की कोशिश नहीं की है कि पहली दलित कहानी किसे माना जाए। लेकिन कालक्रम के अनुसार उपलब्ध कहानियां और कहानीकारों के आधार पर पहली कहानी के रूप में उन्होंने श्री बुद्धशरण हंस द्वारा लिखित 'देवकृपा' नामक कहानी को प्रकाशित किया है यह कहानी सन् '1978' में प्रकाशित इनके कहानी संग्रह से ली गई है। इसलिए सीधे नहीं तो सांस्कृतिक रूप में उन्होंने इसे ही पहली कहानी माना है। हालांकि यह एक सामान्य कहानी है। वि-ायवस्तु और कहानी तत्वों के आधार पर इसे अच्छी कहानी तो माना जा सकता है लेकिन दलित कहानी नहीं कहा जा सकता। कहानी के मुख्य पात्र बदन के घर में सतनारायण की कथा है। बदन की इस प्रकार के अंधविश्वासों में कम ही आस्था है। लेकिन पिता के कहने पर पुरोहित को बुलाने उसके घर चला जाता है उधर पंडित को पुरोहिती करने के अलावा घर-बार देखने की फ़ुर्सत नहीं है। घर में जवान पंडिताइन की इच्छाओं-अभिला-ाओं से बेखबर पंडित जी अपनी पुरोहिती में मशगूल हैं। लेकिन एक स्त्री की जीवन को लेकर अपनी कुछ इच्छायें हैं। बदन को देखकर पंडिताइन कामातुर हो जाती हैं और उससे अन्तरंग संबंध बना लेती हैं। हालांकि पंडिताइन को इस पर कोई ग्लानि और अफसोस नहीं है। उधर बदन पुरोहित को लेकर अपने घर जाता है। कथा समाप्त होती है तो बदन पंडित जी से पूछता है कि क्या मुझे मोक्ष मिलेगा? जिस पर पंडित कहता है कि हां उसे मोक्ष अवश्य मिलेगा। इस पर बदन कहता है – देव कृपा से मुझे आज ही अभी ही, स्वर्ग और मोक्ष एक साथ मिले हैं। और यहीं पर कहानी समाप्त हो जाती है। पूरी कहानी में कहीं भी ऐसा परिवेश और परिस्थितियाँ उद्‌घाटित नहीं होतीं जो यह बताती हों कि यह दलित चेतना से

प्रेरित कहानी है और बदन एक प्रकार से इसका प्रतिनिधि बना हो। इसलिए उपलब्ध कहानियों में देवकृपा को पहली दलित कहानी नहीं माना जा सकता।

सन् 1981 में मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'कर्ज' 'बहुजन संगठन' नामक पत्रिका में छपी थी। इस कहानी में महाजन के 'कर्ज' को उतारता, और उनके अन्याय का शिकार है एक दलित रामदीन का परिवार। बेगारी करते और महाजन का कर्ज उतारते हुए वह समय से पहले ही मर गया। जीवन जैसे दलितों के हिस्से में कभी आता नहीं। मौत उन्हें उनके जन्म के साथ ही मिल जाती है। कारूणिक परिस्थितियाँ और शो-ाण क्या दलितों के यहां जीवन कहा जा सकता है?

रामदीन भी जैसे चालीसवां पार करते-करते ही मर गया था। बेटा अशोक शहर की मील में मजदूर था लेकिन आत्मविश्वास से भरा और अधिकारों के प्रति सजग। बाप के मरने के बाद गाँव में रह गयी हैं जवान बहन और माँ। हाथ में पैसा नहीं लेकिन पूरा गाँव, उसके अपने दलित समाज के लोग भी चाहते थे कि वह बाप की तेरहवीं करें और सभी गाँव वालों को नौता दे। लेकिन कर्ज लेकर वह तेरहवीं नहीं करता बल्कि तेरहवीं करने से ही इंकार कर देता है। यह एक प्रकार से उत्पीड़नकारी संस्थानिक मूल्यों के प्रति नकार है। वह किसी के दबाव में नहीं आता और बहन और माँ के रहने का इंतजाम करने शहर चला जाता है। उधर गाँव में महाजन उसकी बहन और माँ का बलात्कार कर उसकी हत्या कर देता है। अशोक पुनः गाँव लौटता है, वह कसम खाता है कि इसका बदला वह लेकर रहेगा। और अन्ततः वह महाजन और उसके कारिन्दे उज्जड़ सिंह की गोली मारकर हत्या कर देता है।

इस कहानी को इसकी वि-ायवस्तु, परिस्थितियों के घात-संघातों, अंबेडकरवादी चेतना के कारण दलित कहानी कहा जा सकता है। भा-ाा के माध्यम से कहानी में एक तनाव बनता है। इसलिए भा-ाा और शिल्प की दृ-िट से भी यह कहानी के योग्य है। इसलिए जब तक इससे पूर्व किसी अन्य कहानी के साक्ष्य नहीं मिलते इसे पहली दलित कहानी मानी जानी चाहिए।

हिन्दी की दलित कहानियों की इसी समानान्तर परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कहानीकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि एक महत्वपूर्ण कहानीकार है। इनके अतिरिक्त, विपिन बिहारी, जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौरे, रजतरानीमीनू, मोहनदास नैमिशराय, उमराव सिंह जाटव, रतन कुमार सांभरिया, सूरज बड़त्या, प्रह्लादचंद्र दास, अजय यतीश, अमित कुमार, सुदेश तनवर, अरूण गौतम आदि महत्वपूर्ण कहानीकार हैं, जिन्होंने दलित कहानी को एक नया मुकाम दिया है। और दलित कहानियों में भा-ाा, शिल्प और वि-ायवस्तु के नये प्रयोग कर दलित कहानी का विकास किया है। दलित कहानीकारों में सूरजपाल चौहान एक महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। इस इकाई में हम सूरजपाल चौहान की कहानी 'परिवर्तन की बात' पर विवेचना करेंगे।

11.3 यातना की पहचान व मुक्ति की चेतना

कहानी का प्रारंभ सदियों से चली आ रही वर्ण-जाति द्वारा बाँटे गए पेशों के निर्वाह की मान्यता से होता है जब गाँव में रघु ठाकुर की गाय मर जाती है और रघु ठाकुर चमार मौहल्ले में जाकर किसना को उसके घर के बाहर खड़ा होकर पुकारता है। किसी सवर्ण के सुबह-सुबह आकर बुलाने पर बस्ती के लोग यह समझ जाते है कि कोई मुसीबत उनके सिर पर आ गई या बेगारी कराए जाने के भय से भी वे परेशान हो जाते थे। किसना भी अपना नाम पुकारे जाने पर हडबड़ा जरूर उठता है लेकिन वह डरता नहीं। उठकर

अपनी आँखों को मलता हुआ, आत्मविश्वास से भरा, इत्मीनान से बाहर आता है। जहाँ पहले किसी ठाकुर और दलित के बीच के आपसी संबंधों में संवाद बेरूखीपूर्ण, अपमान, अमानवीय रूप में होता था। गाँव का ठाकुर या तथाकथित सवर्ण जाति हमेशा अपनी श्रे-ठता को मनवाने के लिए दलित व्यक्ति को नाम संबोधन से नहीं पुकारते थे। लेकिन यहाँ इस कहानी में ऐसा नहीं दिखता। अब वह अपने बदले हुए रूप में दिखाई देता है।

रघु ठाकुर किसना के कुछ पूछने से पहले ही किसना कह उठता है -

"कैसे मर गई ठाकुर? किसना ने आश्चर्य से पूछा।"

प्रश्न करना दलितों ने सीख लिया है। वह कारण पूछ रहा है। क्या इससे पूर्व किसी गैर-दलित द्वारा लिखी गयी किसी कहानी का पात्र यह पूछने का साहस कर पाया? मेरी जानकारी में ऐसा नहीं हैं। संभवत् यही फर्क है दलित रचनाकार और प्रेमचन्द द्वारा लिखी गई कहानियों में। दलित रचनाकार और प्रेमचन्द द्वारा लिखी गई कहनियों के दलित पात्र में।

किसना ने जब गाय मरने का कारण पूछा तो ठाकुर को भी बताना ही था। ठाकुर मना नहीं कर सकता अब। ठाकुर गाय के मरने का कारण ठण्ड लगना बताता है। इसके बाद रघु ठाकुर उसे मरी गाय उठाकर कहीं फेंक आने के लिए कहता है। किसना बिना कोई जवाब दिये मुड़कर घर में वापिस चला जाता है।

किसना का बिना कुछ बोले वापिस घर में चले जाना क्या कोई मामूली बात है? आप याद करें प्रेमचन्द के दलित पात्रों का क्या हाल है। गोदान का होरी जमींदार के कारिन्दे की एक आवाज पर जमीन पर लेट जाता था। आप इसे केवल समय का फेर न कहें। यह केवल समय का फेर मात्र नहीं हैं यह चेतना का भी फर्क है। और फिर आप 'सहानुभूति' और 'स्वानुभूति' के तर्क को क्या आसानी से खारिज कर सकते हैं। आइये देखें आगे कहानी के भीतर क्या हो रहा है।

ठाकुर मौहल्ले में गाय का मरना जैसे चर्चा का केन्द्र बन गया था। ठाकुर मौहल्ले के अन्य बिरादराना (ठाकुर) लोग भी रघु ठाकुर के घर पर अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिए जा पहुँचे। उनके बीच होती चर्चाओं से आप अन्दाजा लगा सकते हैं कि समय के साथ-साथ गाय से जुड़े हुए हिन्दू सांस्कृतिक मूल्य, शुचितावादी भावना, और 'गऊ मैया' वाला भाव कैसे अब बदल चुका है इसका पता भी कहानी में चलता है। रघु ठाकुर से साथ सहानुभूति दिखाते हुए ठाकुर हरप्रसाद कहता है कि -"रघु तुम्हारी गाय मर गयी, मुझे बहुत दुःख हुआ। लेकिन एक तरह से अच्छा ही हुआ। चारा खाती थी पंसेरी और दूध बस छटांक भर।"

ठाकुर हरप्रसाद के कथन से अपनी सहमति प्रकट करते हुए रघु ठाकुर कहता है -

"कह तो ठीक रहे हो, मेरा ही दिमाग खराब था कि रामू की माँ के कहने पर खरीद ली। वरना गाय इस युग में किस काम की?" ...फिर भी भैया, गाय है तो गऊ-माता।

इस प्रकार के बहुत वाक्य हैं जो आधुनिक युग में सवर्ण एवं दलित की नयी इंसानी संबंध सूत्रता को सामने रखते हैं।

"*किसना भैया कल रात हमारी गैया मर गई*"

जरा इसे ध्यान देकर पढ़े जो एक नये प्रकार की संबंध-सूत्रता के सच को बयान करती हैं। 'किसना भैया' जैसे आपसी भाईचारे के शब्द इससे पहले किसी सवर्ण मुँह से सुने

हैं कभी? दलित समाज के लोग तो उसके लिए 'अबे', ओय, 'चलबे' चमारे, जैसे उच्चारणों और शब्दों के ही संबोधन से पुकारते रहे हैं। यह है नये सूत्रता से बने शब्द। ये शब्द बदली हुई परिस्थितियों, दलितों के संघर्-ा, आत्मविश्वास और नयी चेतना की ओर भी संकेत करते हैं। यह शब्दों की नयी परिभा-ा है। यह केवल शब्दों का बदलना नहीं है बल्कि पूरी एक शो-ाणकारी परंपरा का बदलना है। नये शब्द आये हैं, नयी परिभा-ा आयी है। लेकिन यह अभी मुकम्मल नहीं है। अभी तो शब्दों को नया अर्थ देना बाकि हैं, नये शब्दकोष की दरकार भी है। बहरहाल, गाय के मरने की बात सुनकर किसना गाय के मरने का कारण पूछता है। किसना कहता है -

लेकिन ठाकुर हर प्रसाद कहता है -

"अरे कैसी गऊ माता? भैंस माता कहो अब तो।" हर प्रसाद ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा -"भैंस दूध अधिक देती है, भला गाय कहाँ ठहरती है भैंस के आगे।"

यह है नयी बदली हुई सवर्ण मानसिकता जो लाभ-हानि को नयी परिस्थितियों से बनी हैं। कैसे गाय को अपदस्थ कर भैंस महत्वपूर्ण हो जाती है। यह कहानी आधुनिक संस्कृति के प्रभाव को दर्शाती हैं बदले हुए हिन्दू परिवेश और दलितों के भीतर आये आत्मविश्वास को रेखांकित करती हैं।

दोपहर होने को आयी थी लेकिन किसना का कहीं भी अता-पता न था। वह अभी तक ठाकुर मौहल्ले में मरी गाय को उठाने नहीं गया था। गाय ठाकुरों के कुएँ के पास मरी थी इससे ठाकुरों का पूरा मौहल्ला पानी भरने को तरस गया था। गाय रात को मरी थी जिससे अब गाय का शरीर फूलकर मोटा हो गया था और उससे बदबू भी आने लगी थी। एक ठकुराइन ने अपनी नाक पर धोती का पल्लू रखते हुए कहा था -

"*नासपीटी ने यहीं मरना था। कहीं दूर जाकर ही मरती।*"

किसना द्वारा मरी गाय उठाने नहीं आने पर ठाकुर मौहल्ले में बैचेनी बढ़ती जा रही थी। रघु ठाकुर ने दो बार अपने बेटे रामेसर को किसना को बुलाने भेजा था लेकिन किसना नहीं आया। तत्पश्चात् रघु ठाकुर अपने बेटे रामेसर और हरप्रसाद दोनों को साथ ले पुनः किसना के घर गया। वहाँ जाकर रघु ठाकुर ने देखा कि किसना चारपाई पर बड़े ही इत्मीनान से बैठा हुआ है। ठाकुर को अपने घर की ओर आता देखकर भी किसना के चेहरे पर डर के कोई भाव दिखाई नहीं दिये। और वह ज्यों का त्यों बैठा रहा। यह देखकर रघु ठाकुर गुस्से से लाल हो गया। ठाकुर ने किसना को धमकाते हुए आदेश दिया कि वह जाकर मरी गाय उठा ले। लेकिन किसना ने प्रति उत्तर में कहा कि उसने और उसके चमार टोले के सभी लोगों ने मरे जानवर उठाना बन्द कर दिया है। किसना की यह निडरता हमें दलित तबकों में आये आत्मविश्वास और नई चेतना को रेखांकित करती है। यह आत्मविश्वास और नयी चेतना आंबेडकरवादी वैचारिकी और दलित आंदोलन की देन है। सोये हुए को जागने का और दबे हुए को उठकर खड़े होने का संकेत है। रघु ठाकुर उसे डांटता है, डराता है और इसके दु-कर परिणाम का भय दिखाता है। लेकिन किसना बिना डरे सिर्फ इतना कहता है -

"ठाकुर साहब, अब समय बदल रहा है। क्या आप नहीं चाहते कि समय के साथ हम भी बदलें।" किसना में जगे आत्मबोध और विकास प्रक्रिया में हिस्सेदारी का अहसास जगने का ही यही प्रमाण है।

इसमें इतिहास के करवट लेने की सुगबुगाहट है। समय के बदलने की पगध्वनि है। नयी चेतना, आत्मविश्वास और आंदोलन ने कैसे दलित तबकों के बीच यह चेतना फैला दी है

कि समय के साथ उन्हें भी बदलना है। सम्मान हासिल करना है। समानता के सूत्र को और सम्मान के मंत्र को उन्होंने आत्मसात कर लिया है। सूरजपाल चौहान इस कहानी में दिखाते हैं कि समय कैसे करवट लेता है। लेखक कहानी में अपने पात्र किसना के मुँह से भवि-य के दलित समुदाय का उद्घो-न कहलवा देते हैं –

"किसना और उसके मौहल्ले के लोग आज तयकर के बैठे थे, उन्होंने मन में ठान ली थी कि 'जीना है तो शान से वरना मौत ही भली'। किसना ने सीधे-सीधे शब्दों में उनसे फिर कहा – "तुम्हारे मरे जानवर हम नहीं उठायेंगे, जो करना है सो करो...।"

यह कहकर जैसे किसना विद्रोह का बिगुल बजा देता है। प्रतिरोध करने वाले, आत्मविश्वास से भरे और आत्मसम्मान से जीने का हक लेने वाले ऐसे दलित समुदाय नेतृत्वकारी किसना को देखकर रघु ठाकुर उनसे कोई जोर जबरदस्ती नहीं करता। यह एक परंपरागत जातिवादी-सामन्ती मठ के ढहने का संकेत था। बेबस होकर रघु ठाकुर थाने में रिपोर्ट दर्ज करा देता है कि किसना गाँव के ठाकुर मौहल्ले से मरी गाय उठाने से मना कर रहा है। गाँव में पुलिस आ धमकती है। थानेदार द्वारा पूछने पर किसना बिना डरे थानेदार को भी वही कहता है –

"थानेदार साहब, हमने फैसला किया है कि हम मरे जानवर उठाने का काम नहीं करेंगे।"

किसना द्वारा बिना भय के ऐसा कहने पर सब हैरान हैं कि एक दलित इंकार कैसे कर सकता है थानेदार भी किसना को डांटता है लेकन किसना नहीं डरता। अब रघु ठाकुर भी समझ जाता है कि ज़ोर जबरदस्ती से काम नहीं चलने वाला, इसलिए वह किसना के भीतर के मानवीय संस्कारों को उत्तेजित करने की कोशिश करता है। वह नया पैंतरा फेंकता है और मरी गाय उठाने को पुण्य का काम बतलाकर किसना को 'गऊ माता' का उलाहना देता है, किसना को पाप-पुण्य के जाल में फंसाने की कोशिश करता है। किन्तु किसना परंपरागत मानसिकता वाला सीधा-सादा, भोला इंसान नहीं है। वह रघु ठाकुर की सारी चालाकियों को समझ रहा है। इसलिए वह रघु ठाकुर की चाल समझकर कहता है–

"वही मैं समझ रहा हूँ कि गाय को गऊ माता कहते हैं, परन्तु इस माता की यह कैसी दुर्गति, वाह, यह कैसी माता है तुम्हारी।"

बेधड़क होकर कहे गए किसना के इस व्यंग्य से ठाकुर बौखला जाता है और किसना को मारने के लिए लाठी से वार करता है। ठाकुर के वार पर किसना भी ठाकुर पर लाठी तान देता है। लेकिन थानेदार बीच-बचाव करके दोनों को अलग कर देता है।

किसना द्वारा ब्राह्मणवाद को दी गई चुनौती ब्राह्मणवादी मानसिकता के रघु ठाकुर और उसकी बिरादरी के सभी को कैसे भाती है। क्योंकि इसी पाप-पुण्य, जन्म, कर्मफल और भाग्यवाद के झूठ के सहारे हजारों व-र्गों की चली आ रही सनातनी व्यवस्था ने इस वर्ग के सत्ता में बने रहने का आश्वासन दिया है।

किसना रघु ठाकुर की चाल को समझता है इसीलिए वह उसकी सारी चालाकियों का उत्तर उतनी ही समझदारी से और निडरता से देता है। वह मरी गाय उठाने को तैयार हो जाता है। ठाकुर, किसना द्वारा मरी गाय उठाने की बात सुनकर खुश हो जाता है कि चलो यह मरी गाय उठाने को तैयार तो हुआ दूसरी तरफ थानेदार भी खुश है कि दोनों समुदाय के बीच का विवाद आसानी से सुलट गया। लेकिन किसना इसी बीच रघु ठाकुर से पूछता है कि क्या वह गाय को माता मानता है रघु ठाकुर किसना को बताता है कि वह गाय और अपनी माता में कोई अन्तर नहीं मानता। इतना सुन किसना रघु ठाकुर से कहता है –

"तो क्या तुम अपनी माँ के मरने के बाद हमे उसे उसी तरह से उठाने दोगे जैसे हम मरी गाय को उठाते हैं।"

यह सुनते ही रघु ठाकुर बौखला जाता है और उपस्थित सवर्ण जाति के सभी लोग किसना की बात सुनकर सन्न रह जाते हैं। ठाकुर दाँत भीचकर कहता है -

"तेरी तो बहन की ...साले खाल खींच लूँगा, यदि एक भी शब्द और आगे कहा तो पूरी-लठिया मुँह में घुसेड़ दूँगा।" इसके बाद में दहशत का माहौल बन गया। थानेदार भी दोनों समुदाय को शान्त रहने की हिदायत देकर वापिस चला गया। लेकिन माहौल कैसे शान्त रह सकता था। किसना ने तो जैसे परंपरागत, ठहरे तालाब रूपी-जातिवादी जाल में कंकड़ डालकर उसे हिला दिया था। इसकी प्रतिक्रिया तो होनी ही थी। चमार मौहल्ला सोचता है कि यह ठीक नहीं हुआ। किसना भी किसी अनजाने भय से थोड़ा सहम सा जाता है।

लेकिन किसना का यह वाक्य कि गऊ माता और ठाकुर की माता दोनों ही समान हैं यह एक महत्वपूर्ण और चुनौती भरा वक्तव्य है। पूरा गाँव सहमा है, सब जानते हैं कि किसना को इस प्रतिरोध का परिणाम झेलना पड़ सकता है। चूंकि प्रतिरोध करने के लिए आत्मबल, आत्मविश्वास और जागरूकता बेहद जरूरी है। लेकिन इन सबके बावजूद सदियों से सताये गये दलितों के भीतर सवर्ण प्रतिक्रिया का भय और कुछ बुरा होने की आशंका उन्हें डराती है। किसना एवं दलित समुदाय के सामने कानपुर गाँव के दलितों के सफल प्रतिरोध का उदाहरण भी तो था। मटनपुर गाँव के दलितों ने भी तो सामूहिक रूप में निर्णय लिया था कि वे मरे जानवर को अब कभी नहीं उठायेंगे। तमाम जुल्म के सामने वे डटे रहे थे और सफल भी तो हुए थे। सामूहिक निर्णय और प्रतिरोध ही किसी भी बड़े परिवर्तन को सामने ला सकता है। अपने आत्मबल को लगातार बनाये रखने के लिए किसना इस पर भी सोचता है। किसना भयभीत केवल अपने लिए नहीं था बल्कि पूरे समुदाय के लिए था। वह जानता था कि उसने तो केवल प्रतिरोध करने की शुरुआती भूमिका निभायी है लेकिन उसके किये का भुगतान तो सभी दलितों को भोगना पड़ सकता है। और हुआ भी वही जिसकी आशंका उसे सताये जा रही थी। सवेरे जब उसने उठकर देखा कि उसके मौहल्ले के चारों तरफ ठाकुरों ने कांटेदार तारों की बाड़ खींच दी है। दलितों के घरों में पानी लाने के सभी रास्तों को बन्द कर दिया गया है और रघु ठाकुर हाथ में लट्ठ लिये मुस्कुरा रहा है जैसे कह रहा हो -

"साले चमारों, समय परिवर्तन की बात करते हो। हम भी देखते हैं तुम्हारा समय कैसे बदलता है। अब घरों में हगों और मूतों।"

यह सवर्ण प्रतिरोध की अग्रिम प्रतिक्रिया। वे या तो अपनी ज़मीन से दलितों को आना जाना बंद कर सकते हैं या फिर अधिक प्रतिरोध करने पर दलितों के घरों को जला सकते हैं। जिसका उदाहरण हरियाणा के गोहाना, झज्जर, महमूदपुर, पलवल और महारा-ट्र में खैरलांजी जैसी घटनाएँ हैं। हकीकत में यह ढहते सामन्ती जातिवादी मूल्यों की अन्तिम पराका-ठा है जिनके दिन अब लदने को है। दलित समुदाय के बीच आयी चेतना और उनका प्रतिरोध के लिए उठ खड़ा होना इसी का संकेत है जो कि कहानी के माध्यम से दर्शाया गया है।

11.4 प्रतिरोध की पगध्वनि

इस कहानी का प्रारंभ ही प्रतिरोध के स्वर से होता है। जब रघु ठाकुर किसना को बताता है कि उसके गाय मर गयी है। इस सूचना को पाकर होना तो यह चाहिए था कि किसना

चुपचाप रघु ठाकुर की मरी गाय उठाने के लिए चल पड़ता। लेकिन इसके विपरीत पूरे आत्मविश्वास के साथ वह प्रश्न पूछता है -'कैसे मर गयी ठाकुर' आप जरा इस वाक्य-विन्यास पर गौर करें। सामंतों को एक कारिंदे द्वारा इस प्रकार से इकहरे संबोधन द्वारा प्रश्न करना, इसे दुस्साहस ही कहा जा सकता है। क्योंकि इससे पूर्व तो दलित समाज के हिस्से केवल हुक्म बजाना ही आया है। लेकिन आधुनिक युग की नयी चेतना और आंबेडकरवादी आंदोलन का प्रभाव है कि किसना सामने डटकर खड़ा हो सवाल पूछता है। दूसरी तरफ वह 'मालिक' या 'हुजूर' इत्यादि शब्दों में रघु ठाकुर की जी हुजूरी नहीं करता बल्कि पूछता है - कैसे मर गयी ठाकुर? यहाँ 'ठाकुर' शब्द का इस्तेमाल है। यहाँ 'ठाकुर जा' या माई बाप शब्द भी नहीं आया। सीधे-सीधे 'ठाकुर' सामंती व्यवस्था पर चोट करने और दलितों को सौंपे गए मलीन काम छोड़ने के संकल्प से किसना में जगे आत्मबोध का परिचय हमें होता है। ठाकुर जो कि दलित समाज के लिए अन्याय एवं उत्पीड़न का प्रतीक है। दमनकारी संस्था का प्रतिनिधि है। लेकिन यहाँ पर ठीक अलग रूप में अपनी पहचान के लिए चिंतित एक मामूली सा दलित अपने सम्बोधन में उसे 'ठाकुर' कहता है। एक सपाट बयानी। यह छोटे तबकों के भीतर जग रही चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है।

रघु ठाकुर के यह बताने पर कि शायद रात को ठण्ड के कारण गाय मर गयी है। यह सुनकर किसना प्रश्न कर बैठता है "तो मैं क्या करूं?" एक दलित ठाकुर की आँख में आँख डालकर फिर से प्रश्न करना दर्शाता है कि उसमें प्रश्न करने का साहस आ चुका है। यह इस बात का संकेत है कि दलित समुदाय के भीतर आंबेडकरवादी चेतना ने आत्मविश्वास का भाव जगाया है। आगे देखिए,

रघु ठाकुर कहता है-

'करेगा क्या? उसे उठाकर फेंक आ और जो खाल-वाल उतारनी है सो उतार ला।'

लेकिन जैसे किसना एवं दलित समाज ने ठान लिया था कि अब वे किसी की गुलामी नहीं करेंगे। मरे जानवर नहीं उठायेंगे। इसीलिए किसना ठाकुर से बिना कुछ बोले अपने घर के भीतर चला जाता है। पूरी कहानी की बुनावट में जैसे प्रतिरोध की पगध्वनि व्याप्त है। पात्र प्रश्न करता है, जवाब लाठी का जवाब लाठी से देता है और आँखों में आँखे डालकर, डटकर सामने खड़ा हो जाता है। जैसे उसे अब झुकना मंजूर नहीं। चालाकी का जवाब चालाकी से देता है। सभी शो-णकारी संस्थान, पुलिस-पंचायत, ठाकुर बिरादरी डरा-धमकाकर, धर्म की मोहमाया, कर्तव्य का वास्ता देकर किसना को मरी गाय उठाने को कहते हैं। लेकिन जैसे किसना ने शपथ ले ली हो। वह कहता है "ठाकुर मैंने और मेरे मौहल्ले के सभी लोगों ने मरे जानवर उठाना बन्द कर दिया है।" अन्दाजा लगायें जरा इन पंक्तियों से। इनमें जहाँ एक प्रकार से चुनौती का स्वर भी है वहीं प्रतिरोधी दलित चेतना से भरा आत्मविश्वास भी है। 'बंद कर दिया है' वाक्य जैसे कह रहा हो कि बहुत सह लिया तुम्हारा जुल्मों सितम, लेकिन अब नहीं सहेंगे। ऐसा नहीं है कि वे इसके बाद के परिणाम से वाकिफ नहीं थे। किसना और अन्य दलित भली-भांति जानते थे कि 'मरे जानवर' उठाने से इन्कार करने का परिणाम बहुत भयानक होगा। गाँव के सारे सामंत और परिणाम भी भयानक ही होता है। ठाकुर मिलकर दलित मौहल्ले के चारों और कांटेदार तारों की बाड़ लगा देते हैं।

संक्षेप में कहें तो कहानी की कथावस्तु संकेत करती है कि बिना प्रतिरोध किए परिवर्तन संभव नहीं है। परिवर्तन के लिए किसी भी तरह का परिणाम भुगतने को तैयार रहना चाहिए। इसीलिए कहानी की बुनावट के भीतर प्रतिरोध एक बड़ा मूल्य बनकर उभरता है जो बदलते समाज की ओर भी इशारा करता है।

11.5 गाय एवं हिन्दू संस्कृति का क्षरण

सवर्ण अवमानना का दंश गाँव के सभी दलित भोगते हैं। लेकिन इस कहानी में किसना ने एक जंग की, प्रतिरोधी संस्कृति की शुरुआत की प्रक्रिया को दर्शाया है। उसकी यह शुरुआत, प्रतिरोध एक दूरगामी प्रभाव छोड़ने वाला है। यह सकारात्मक इस अर्थ में है कि किसना विद्रोह की आवाज बन जाता है। एक नये प्रकार के नायकत्व की अवधारणा लेखक इस कहानी के माध्यम मे सामने रखता है। अपनी प्रकृति में यह कहानी भले ही गाय के मरने से शुरू होती है, लेकिन यह सामान्य अर्थ से गहरे अर्थ की तरफ बढ़ती है। एक तरफ जहाँ दलित जातियों को हिन्दू संस्कृति, धर्म और मूल्यों में उनके प्रति भेदभाव, तिरस्कार, घृणा और बहि-कार के वे सभी विधि-विधान, नियम, निर्देश होने के सच्चाई का पता चला है तो दूसरी तरफ पाप-पुण्य, कर्मफल, भाग्यवाद जैसी दार्शनिक शब्दावली या 'गऊ माता' वाले भाव को लेकर अब उन्हें और अधिक भरमाया एवं ठगा नहीं जा सकता।

इससे पूर्व की दलित कहानियों में, चाहें वह किसी दलित द्वारा लिखित कहानी या गैर-दलित द्वारा लिखित कहानी हो। वहाँ पर दलित पात्र प्रायः हिन्दू संस्कृति के मूल्यों एवं परंपराओं से बंधे दिखायी देते हैं। लेकिन इस कहानी में ऐसा कहीं भी दिखायी नहीं देता। बल्कि ठीक इससे उलट गाय का मरना जैसे दलित समाज के मुक्त होने की अभिला-ा बन जाता है। गाय हिन्दू संस्कृति में एक पवित्र पशु के रूप में मान्य है। और गाय का दान करना एक पवित्र एवं आध्यात्मिक कर्म माना जाता है। लेकिन 'परिवर्तन की बात' कहानी में गाय अब दलित समाज के लिए पवित्र पशु नहीं रह गयी है। और न ही उसकी मृत देह को उठाना कोई पुण्य कर्म रह गया है। यह सब परिवर्तन आया है आंबेडकरवादी चेतना के कारण। इस तरह से मरी गाय को उठाने से इन्कार करके किसना ने दलित समाज के भीतर से हिन्दू संस्कृति, मूल्यमान्यताओं को तिलांजली दी है।

11.6 सारांश

'परिवर्तन की बात' कहानी भारतीय समाज के जातिवादी उत्पीड़न और दलित समुदाय के प्रतिरोध और विद्रोह की बानगी को प्रकट करती है। गाँव में रघु ठाकुर की गाय मर जाती है। जैसा कि परंपरागत गाँव की मान्यता है कि मरे जानवर उठाने का काम तो दलित समुदाय को ही करना है। इसीलिए रघु ठाकुर अपनी मरी गाय उठवाने के लिए दलित मौहल्ले में जाता है और किसना से कहता है कि उसकी गाय मर गयी है उसे उठाकर फेंक आए। लेकिन आधुनिक युग में बदले हुए माहौल और आंबेडकरवादी चेतना के कारण किसना मरी गाय उठाने से मना कर देता हैं। चूँकि अब दलित समुदाय ने समझ लिया था कि परंपरागत पेशे से जुड़ा होने के कारण भी तथाकथित ऊँची जातियाँ उनसे अछूतपन का व्यवहार करती हैं। घृणा करती हैं। इसीलिए वह रघु ठाकुर से कहता है कि "ठाकुर मैंने और मेरे मौहल्ले के सभी लोगों ने मरे जानवर उठाना बन्द कर दिया है।"

यह वाक्य बहुत ही युगान्तकारी और ऐतिहासिक है। क्योंकि दलित समाज जब यह समझ जाएगा कि उनके शो-ाण और अन्याय का आधार क्या है तो उसी दिन से परिवर्तन की बयार बहनी शुरू हो जाएगी। और इस कहानी में यह सब होता हुआ दिखाई देता है।

किसना द्वारा मरी गाय उठाने से इंकार करने पर गाँव की सवर्ण जातियां पुलिस-प्रशासन का सहारा लेकर दलितों से वह कार्य जबरदस्ती कराना चाहते हैं। ठाकुरों की शिकायत पर थानेदार गाँव में आता है। वह भी दलितों से मरे जानवर उठाने के लिए कहता है लेकिन सभी दलित इससे इंकार कर देते हैं। इसके बाद दलितों को धर्म का हवाला देकर अर्थात् धर्म द्वारा किए गए काम के बँटवारे का चुपचाप निर्वाह करना और पाप पुण्य की

बातें कहकर उन्हें भरमाने की बातें की जाती हैं। लेकिन दलित समुदाय किसी भी सूरत में मरी गाय उठाने से इंकार कर देते हैं।

दलित समुदाय प्रतिरोध और विद्रोह तो कर देते हैं लेकिन उन्हें भीतर डर भी लगता है कि न जाने अब कैसा अन्याय और उत्पीड़न उन्हें सहना पड़ेगा। लेकिन साथ-साथ उनके सामने दूसरे गाँव के दलित मौहल्ले का उदाहरण भी था। मटनपुर गाँव के दलितों ने भी परंपरागत पेशे और मरे जानवर उठाने से मना कर दिया था। इसी कारण उन्हें इस पेशे से मुक्ति मिली थी। विद्रोह, प्रतिरोध, परिवर्तन की चेतना, भय और आत्मविश्वास के भाव कहानी में साथ-साथ चलते हैं। लेकिन जिस बात की उन्हें आशंका थी वह घटित भी होती है। सवेरे किसना देखता है कि पूरे दलित मौहल्ले के चारों ओर एक मजबूत काँटेदार तारों की बाड़ खींच दी गई थी। यानि कि सवर्ण जातियों की अवमानना की कीमत अब दलित मौहल्ले को चुकानी थी।

'परिवर्तन की बात' कहानी जहाँ एक तरफ दलित साहित्य में एक नये प्रकार के अध्याय की शुरुआत करती है वहीं दूसरी तरफ यह संदेश भी देती है कि समय के अनुसार बदलना होगा क्योंकि जनतंत्र में सभी को समता और स्वतंत्रता का अधिकार बहाल किया है। और यह जनतंत्र इंसान को सम्मान और स्वाभिमान से जीने का हक भी देता है। जिसे हासिल करने के लिए इसे प्रतिरोध का स्वर तेज करना ही पड़ता है।

इस बदलाव की सबसे ज्यादा आवश्यकता तो दलित समाज को है। अब दलित समुदाय को परंपरागत पेशों को छोड़ना होगा। बिना परंपरागत पेशों को छोड़े और जातिवादी संस्थानों के खिलाफ उठ खड़े हुए बिना उन्हें मुक्ति नहीं मिल सकती है। निश्चित रूप से यह कहानी अपने आकार में छोटी होते हुए भी दलित समुदाय के साथ-साथ भारतीय समाज को एक बड़ा संदेश देती है। और वह है - परिवर्तन के लिए खुद को तैयार करना।

11.7 dN उपयोगी पुस्तकें

दलित साहित्य चिंतन की विविध आयाम - संपादक डॉ. एन. सिंह।

दलित साहित्य की अवधारणा - कंवल भारता।

भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर - प्रो. विमल थोरात, सूरज बड़त्या।

दलित साहित्य की भूमिका - हरपाल सिंह 'अरूष'।

दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर - विमल थोरात।

डॉ. अंबेडकर वाड्मय – भाग–1, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 1998, दिल्ली।

ओम प्रकाश वाल्मीकि – 'दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र', राधाकृष्ण प्रकाशन, 2001, 2008 संस्करण, नई दिल्ली।

हरपाल सिंह 'अरूष' – 'ओम प्रकाश बाल्मीकि की कहानियों में दलित चेतना', जवाहर पुस्तकालय, 2008, मथुरा।

जयप्रकाश कर्दम – 'दलित विमर्श : साहित्य के आईन में', साहित्य संस्थान, 2006, गाजियाबाद।

विमल थोरात – दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर', अनामिका प्रकाशन, 2008, दिल्ली।

कथा संग्रह ^अपना मकान*, ^पुनर्वास*, ^आधे पर अंत*, ^राजमार्ग पर गोलीकांड*] ^चील* - विपिन बिहारी।

दलित साहित्य की अवधारणा - कंवल भारती।

दलित साहित्य की भूमिका - हरपाल सिंह ⁄अरू-ा*।

दलित साहित्य अम्बेडकरवादी साहित्य विशे-ांक, अप्रैल-जून 2007।

भारतीय विद्रोही दलित कविता - संपादक प्रो. विमल थोरात, सूरज बड़त्या, 2007।

दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर - प्रो. विमल थोरात, 2009।

11.8 प्रश्न/अभ्यास

1) 'परिवर्तन की बात' कहानी के माध्यम से वर्चस्ववाद और शो-ाण की परंपरा के संबंधों को स्प-ट कीजिए।
2) मुक्ति की चेतना के विस्तार को कहानी के माध्यम से प्रस्तुत कीजिए।
3) जातिनिहाय समाज व्यवस्था और पेशेगत विभाजन को दर्शाते हुए एक निबंध लिखिए। (300 शब्दों में)
4) दलित मुक्ति आंदोलन की पृ-ठभूमि में प्रस्तुत कहानी में अभिव्यक्त प्रतिरोध के स्वर की विवेचना कीजिए।
5) दलित कहानी की सोद्देश्यता पर विचार कीजिए।
6) दलित लोक कथा और दलित कहानी के अंतःसंबंधों की विवेचना कीजिए।
7) दलित कहानी की कथावस्तु की आधारभूमि पर अपना मन्तव्य स्पष्ट कीजिए।
8) दलित कहानी के वैशिष्टय की विवेचना कीजिए।
9) दलित कहानी के सामाजिक, सांस्कृतिक सरोकारों को निर्दिष्ट कर सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।
10) ⁄आवाजें* कहानी के आधार पर मोहनदास नैमिशराय की दलित-चेतना का विवेचन करें।
11) आधुनिकता ने भारतीय समाज पर किस तरह का असर डाला है?

    ⁄आवाजें* कहानी को ध्यान में रखकर इस प्रश्न पर विचार करें।
12) मकदूमपुर गांव के मेहतरों की सांस्कतिक आर्थिक स्थिति की विवेचना करें।
13) ठाकुर अवतार सिंह किन उपायों से मेहतरों को दबाए रखना चाहता है? सवर्ण मानसिकता पर रोशनी डालते हुए इसका निरूपण करें।
14) भारतीय समाज किन परिवर्तनों से होकर गुजर रहा है?

    वर्णवादी/जातिवादी समाज-व्यवस्था के खात्मे के जिस आशावाद से ⁄आवाजें* कहानी का समापन होता है, क्या आप उससे सहमत है?
15) ⁄आमने-सामने* कहानी के माध्यम से सवर्ण अवसरवाद बनाम दलित दृ-िट पर विचार कीजिए।
16) ⁄आमने-सामने* कहानी दलित अस्मिता के संदर्भ में किन मुद्दों को उठाती है?
17) ⁄सवर्ण अवसरवाद* अंततः सवर्ण हित का पो-ाक है, ⁄आमने-सामने* कहानी के माध्यम से स्प-ट कीजिए।
18) दलित उत्पीड़न के संदर्भ में स्वानुभूति और सहानुभूति के सवाल को ⁄आमने-सामने* कहानी के माध्यम से स्प-ट कीजिए।